सतगुरु ओशो के चरणों में समर्पित

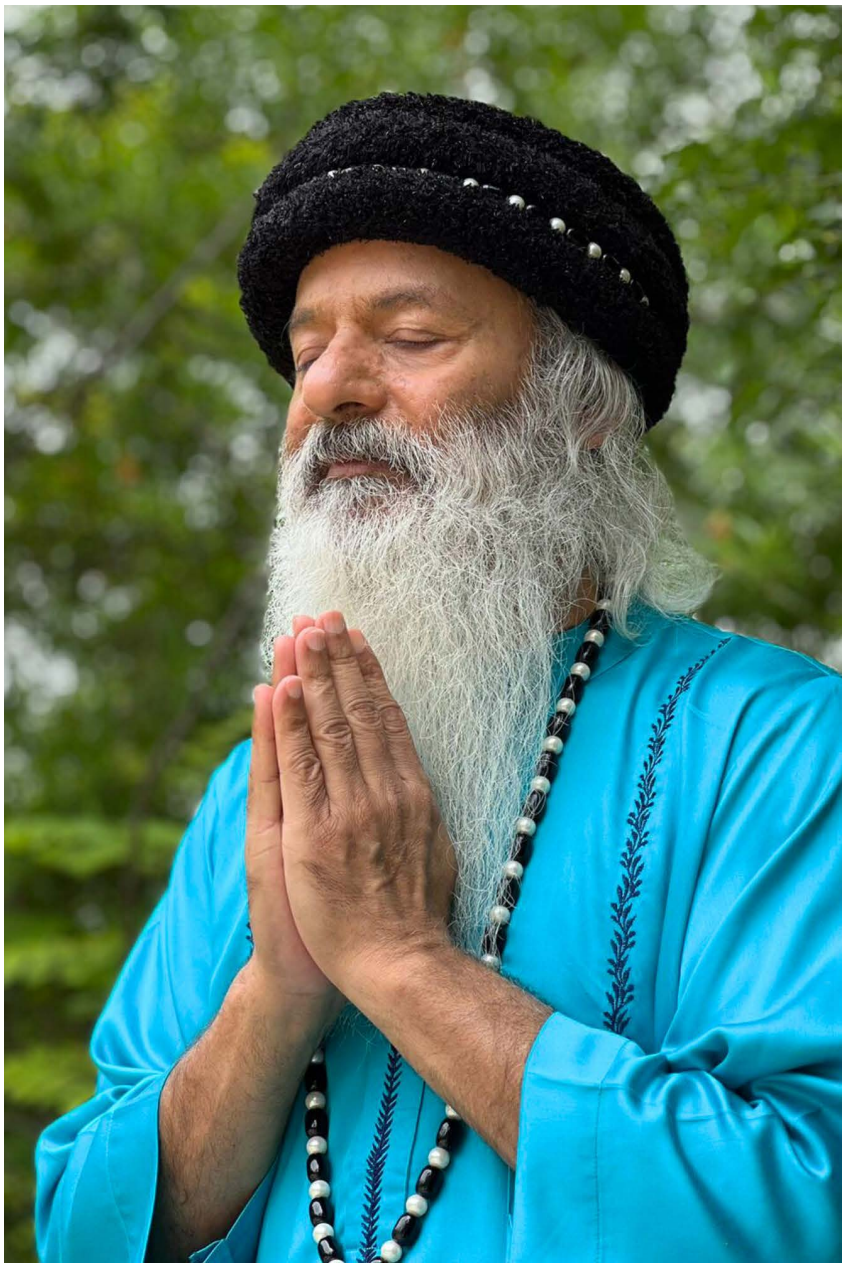

प्रवचन-1

समाधि–सुमन, शांति–सुगंध

प्रश्नसार—

1. युवा वर्ग शांत व आनन्दित कैसे रहे?
2. वृद्धावस्था को उत्सवमय बनाने के सूत्र
3. जीवन दु:ख-दर्द के सिवाय कुछ भी नहीं?
4. समाधि की अवस्था में है परमानंद
5. ओशो की अनूठी आनन्द-दृष्टि

पहला सवाल- युवा वर्ग के लोग शांत, आनन्दित और उत्सव-पूर्ण रह सकें कृपया इस संबंध में कुछ सूत्र बताएं?

सबसे पहले तो शांति एवं आनंद में भेद समझ लें। शांति की हम साधना कर सकते हैं, आनंद परिणाम स्वरूप घटित होता है। आनंद सीधा नहीं पाया जा सकता। शांति प्राप्ति के सात बिंदुओं पर मैं विशेष रूप से चर्चा करना चाहूंगा।

पहला– बचकानेपन से मुक्ति। शरीर तो जवान हो जाता है, पर मन वही बचकाना का बचकाना रह जाता है। सचमुच में ही युवा होना है तो बचकानेपन से मुक्त होना। हाँ, कुछ चीजें बचपन की बचाने जैसी हैं, उनको बचाना। उसके लिए सात बिंदु गिनाता हूँ:–

पहला-प्रफुल्लता, मुदिता का भाव,
दूसरा-सरलता और सहजता,
तीसरा-आश्चर्य बोध और रहस्यमयता,
चौथा-रसमग्नता, विभोर होने की कला,
पाँचवां-समग्रता, तल्लीनता,
छठवां-प्रामाणिकता व अखंडता,
सातवां-निरअहंकारिता,

बचपन की इन भावनाओं को बचाना और बचकानेपन से मुक्त होना।

दूसरा—भविष्य से मुक्ति।

योजनाओं और कल्पनाओं में ही नहीं जीने लगना, वर्तमान में जीना, तो ही जीवन में शांति और आनन्द जान सकोगे। बचपन गया, वह अब कहीं है नहीं। और भविष्य अभी आया नहीं, जो अभी है, वह है केवल वर्तमान। तो भविष्य के भ्रमात्मक कल्पना जाल से मुक्त रहना।

तीसरा—महत्त्वाकांक्षाओं से मुक्ति। एम्बीसन्श ही अशांति की जड़ें हैं।

जो कामनाएं हैं, बड़े-बड़े सपने हैं, सपने के रूप में तो वे सुख देंगे, लेकिन वही अंततः सारे जीवन में दुख के कारण बनेंगे।

चौथा—वैज्ञानिक दृष्टिकोण हो, एक क्रांतिकारी, विद्रोही व्यक्तित्व हो। संकल्पपूर्वक जीवन को जीना सीखो।

पाँचवां—भाव के तल पर प्रेमभाव, मैत्री भाव को साधो, फैलाओ हृदय के भावों को। विधायक भाव शांतिदायी और निषेधात्मक भाव अशांति के स्रोत होते हैं।

छठवां—युवा वर्ग के लिए धर्म होना चाहिए- जीवन जीने की कला। ओशो की एक किताब है— 'जीवन ही है प्रभु और न खोजना कहीं'। जीने की कला अध्यात्म की पर्यायवाची बने।

सातवां—जीवन में साधना किस प्रकार की हो— मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर और अनाहत; इन चार चक्रों से संबंधित कर्मयोग, तंत्रयोग, हठयोग और भक्तियोग की साधना युवक-युवतियों के लिए अधिक उपयोगी होगी। जिंदगी में समता, शांति, सद्भाव की वृद्धि करेगी।

दूसरा सवाल- कृपया वृद्धावस्था को शांतिपूर्ण और प्रफुल्लित बनाने के लिए भी कुछ सूत्र बताएं?

पुनः सात बिंदुओं की चर्चा करूंगा।

पहला—यौवन से मुक्ति

जब बूढ़े हो गए हो तो अब सचमुच में प्रौढ़ हो जाओ।

मुल्ला नसरुद्दीन एक बार ओशो के पास आया और बोला—घर में अकेले बूढ़े होते-होते मैं थक गया हूँ, ओशो ने कहा— मैं समझा नहीं, पत्नी कहीं बाहर गई है क्या? मुल्ला ने कहा— पत्नी तो घर में ही है, लेकिन बूढ़ा मैं अकेला ही हो रहा हूँ। मेरी उम्र हर साल एक वर्ष बढ़ जाती है परन्तु पत्नी की उम्र तो मुश्किल से 5 वर्ष में एक-आध वर्ष बढ़ पाती है। जब हमारी शादी हुई थी तब हम दोनों हमउम्र थे। किन्तु अब मैं हो गया 68 साल का और वह है अभी 34 साल की ही है, बड़ा जनरेशन गैप खड़ा हो गया है।

क्या आप जानते हैं कि अमेरिका में कोई महिला आज तक राष्ट्रपति क्यों नहीं बन पाई? क्योंकि अमेरिका के संविधान में नियम है कि 35 साल की उम्र से ऊपर के लोग ही प्रैसीडैंट का चुनाव लड़ सकते हैं। ...आश्चर्य कि कोई महिला आज तक 35 साल से ऊपर गई ही नहीं!

याद रहे—यौवन से मुक्ति, यानि जो बीत गई वो बात गई। शांति का सूत्र तो वही का वही है— वर्तमान में जीने का। युवाओं के लिए मैंने कहा था बचपन से मुक्ति, वृद्धों के लिए कह रहा हूँ जवानी से मुक्ति।

दूसरा सूत्र—अतीत से मुक्ति

अधिकतर देखता हूँ बूढ़ों को, पुराने दिनों के गुणगान करते रहते हैं— हमारे जमाने में घी इस भाव बिका करता था, गेहूँ इस भाव मिला करती थी। कैसा सतयुग था पहले। छोड़ो भी अतीत को। गड़े मुर्दे उखाड़ने बंद करो। जब कोई कौम या जाति बूढ़ी हो जाती है तो वह भी अतीत का गुणगान करने में व्यस्त हो जाती है। हमारे बूढ़े देश के धर्मगुरु समझाते हैं कि वापस रामराज्य लाना है। करोड़ों लोग प्रतिवर्ष रामलीला देखते हैं। जैसे और कोई काम करने को बचा ही नहीं।

तीसरा—अपेक्षाओं से मुक्ति

वृद्ध खूब अपेक्षाओं से भरे होते हैं, और इसी वजह से अशांति से भी। खुद तो कुछ कर नहीं सकते, किंतु दूसरों से बहुत एक्सपैक्टेशन्स रखते हैं।

जिस सास को देखो, वही बहू का रोना सुनाएगी... बहू यह नहीं करती,

वह नहीं करती। ख्याल करें जब आप बहू थीं तब आपने क्या किया था अपनी सास के लिए?

एक महिला मुझसे कह रही थी मैं बड़ी दुर्भाग्यशाली हूँ, मेरी किस्मत ही खराब है, जब मेरे बहू बनने के दिन थे तब मुझे खराब सास मिली, अब जब सास बनने के दिन आए हैं, तो खराब बहू मिली।

बुढ़ापे में दूसरों से अपेक्षाएं बहुत बढ़ जाती हैं। युवकों से मैंने कहा कि महत्वाकांक्षाओं से मुक्ति, वृद्धों से मैं कहता हूँ अपेक्षाओं से मुक्ति।

चौथा–स्वीकार, तथाता भाव, श्रद्धा और समर्पण की भावदशा शांति की जननी है।

जहाँ मैंने युवकों से कहा– क्रांति, विद्रोह, संकल्प और वैज्ञानिक दृष्टि, वहीं वृद्धों से मैं कहूंगा– शांति और समर्पण। अब जीवन के उत्तरार्द्ध में आ गए, अब संकल्प की नहीं, समर्पण की जरूरत है। अब क्रांति नहीं, शांति चाहिए। अब विद्रोह नहीं, तथाता का भाव साधो।

पाँचवां–करुणा और वात्सल्य भाव

जहाँ मैंने युवकों से कहा प्रेम और मैत्री भाव, वहीं वृद्धों से कहूंगा करुणा और वात्सल्य भाव। दूसरों के प्रति कठोर न होना, वात्सल्य का भाव हो अब तुम्हारे भीतर, तो ही तुम ठीक-ठीक बूढ़े हो पाए, वरना परिपक्व न हो पाए। बर्नार्ड शॉ ने 80 साल की उम्र में 20 साल की लड़की से शादी की, रविशंकर ने बुढ़ापे में अपनी नौजवान शिष्या से विवाह किया। बूढ़े हो तो गए परन्तु फिर भी बूढ़ा नहीं होना चाह रहे हैं। यह अप्रौढ़ता का लक्षण है। 25 साल की उम्र में ऐसा करना बिल्कुल उचित था। बचपन के खिलौने बचपन में शोभा देते हैं, जवानी के खेल जवानी में। हर चीज का समय होता है।

युवकों से मैंने कहा प्रेमभाव को विकसित होने देना, वृद्धों से मैं कहना चाहूंगा अब वात्सल्य, करुणा, दया का भाव हो, सहयोग की सद्भावना हो।

छठवां–मृत्यु की कला

युवकों से मैंने कहा धर्म हो तुम्हारे लिए जीवन की कला, वृद्धों से कहना चाहूँगा तुम्हारे लिए धर्म हो- मृत्यु की कला। ओशो की किताब 'मैं मृत्यु सिखाता हूँ' पढ़ो, तिब्बत के 'बारदो' के प्रयोग सीखो, अपने आगामी जीवन की तैयारी करो। याद रखना, मेरी बातों में भेद कुछ नहीं है। युवकों से कहा जीवन जीने की कला, क्योंकि उन्हें अभी जीवन जीना है, वृद्धों से मैं कह रहा हूँ– मृत्यु की कला, क्योंकि अब उन्हें मरना है। हमारी शिक्षा बड़ी अधूरी

है। मैं तो चाहूँगा आध्यात्मिक स्कूल निर्मित होने चाहिए- मृत्यु की कला सिखाने के लिए। जैसे 25 साल तक तुमने जीवन जीने की शिक्षा ली, अब कम से कम पाँच साल तो मृत्यु की कला सीखो। कैसे शांतिपूर्वक विदा होना, कैसे उत्सव में विदा होना, उसकी तैयारी और प्रशिक्षण होना चाहिए।

सातवां–साधना

अब अनाहत चक्र, विशुद्ध चक्र, आज्ञा चक्र और सहस्रार चक्र से सम्बंधित– भक्ति योग, ज्ञान योग, राजयोग और सांख्य योग की साधना हो। सात प्रकार की साधनाओं में से नीचे की चार मैंने युवाओं के लिए गिनवाई हैं, ऊपर की चार वृद्धों के लिए हैं। चौथा उभय बिंदु रखा है दोनों के लिए। ढंग बदल जाएगा भाव का, किन्तु भाव का विकास निरन्तर चलना ही चाहिए। शांति की साधना अंततः समाधि में डुबाने वाली बन जाती है। अथवा किसी

भी विधि से समाधि में डूब जाओ तो जीवन में शांति व्याप्त हो जाती है। स्मरण रहे–समाधि-सुमन से ही शांति की सुगंध फैलती है।

तीसरा सवाल- ज्ञानीजन कहते हैं कि जीवन एक महोत्सव है। किन्तु व्यवहार में देखने में आता है कि जीवन दुःख-दर्द के सिवाय कुछ भी नहीं। आप बताएं सत्य क्या है?

सभी बातें सत्य हैं अलग-अलग दृष्टिकोणों से। तुम जो कह रहे हो 'सब दुःख-दर्द की कहानी है' यह भी एक दृष्टिकोण है। हरा चश्मा लगाकर देखोगे तो सारी दुनिया हरी दिखाई देगी। लाल चश्मा लगाकर देखोगे तो सारी दुनिया लाल दिखाई देगी। जो जीवन के उजले पक्ष की चर्चा कर रहे हैं, उन्होंने एक दूसरा चश्मा लगाया हुआ है। नीला चश्मा लगा कर देखोगे तो सबकुछ नीला

दिखाई देगा। नकारात्मक दृष्टिकोण वाले लोग और सकारात्मक दृष्टिकोण वाले लोग, आशावादी और निराशावादी, दो प्रकार के लोग सारी दुनिया में हैं।

कभी-कभार तीसरे प्रकार के लोग उत्पन्न होते हैं, समदृष्टि वाले; जिन्होंने चश्मा उतार कर देखा, जैसा था, वैसा ही देखा। उन्होंने घोषणा की सत-चित-आनन्द की। चण्डीदास कहते हैं – 'उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र'। ओशो ने अपनी किताब हेतु इसे शीर्षक चुना। यह बिना चश्मे के देखी गयी सचाई है।

जो आशावादी जीवन को फूल की भांति देखते हैं, उनके लिए वही सत्य है। जो निराशावादी काँटे देखते हैं उनके लिए वही सत्य है।

ज्ञानीजनों का वक्तव्य कि जीवन एक महोत्सव है, परमसत्य है। मगर याद रखना, यह मात्र फूलों की बात नहीं है। काँटें और फूल दोनों वृक्ष पर लगे हैं, उस वृक्ष की वास्तविकता की घोषणा है। उसमें कांटे भी समाहित हैं। सारा द्वंद्व गिर जाता है, तब आनन्द-उत्सव दिखायी पड़ना शुरु होता है।

कोई सकारात्मक दृष्टिकोण वाला व्यक्ति भी ऐसी बात कह सकता है। किन्तु उसके बदलने में देर न लगेगी। जो बड़े आशावादी हैं आज, कल वही निराशावादी हो जाते हैं। जो निराशा में जी रहे हैं, वे फिर अचानक आशाओं की उड़ान भरने लगते हैं। एक बीमारी होती है जिसे मैनिक डिप्रैसिव साइकोसिस कहते हैं। चार-छः महीने इस 'बाइ-पोलर-डिसीज' का मरीज बड़ा प्रसन्न, उत्साह-उमंग में जीता है, और फिर उतना ही समय दुखी, पीड़ित, परेशान, निराश जीता है। भोजन में रुचि नहीं बचती, नींद नहीं आती, किसी से मिलने का मन भी नहीं होता, अपने-आप में बिल्कुल सिकुड़ जाता है। बारी-बारी से डोलता रहता है। कमोवेश यह हम सबके मन का पैटर्न है। वह आदमी जो चार-छः महीने बारी-बारी से खुशी और उदासी में जीता है, उसका पागलपन दिखायी देता है। जरा गौर से सोचें कि क्या यह सब हमारे भीतर नहीं है? सुबह आप जिसके प्रति प्रेमपूर्ण हैं शाम को उसी के प्रति क्रोधित हो जाते हैं। कल सुबह फिर क्षमा मांग लेंगे। चार-छः दिन बाद फिर किसी बात पर नाराज हो जायेंगे। आप जस्टीफाइ करके अपने व्यवहार को न्यायोचित ठहरा देंगे; इसलिए आप पागल नहीं कहलाएंगे।

सकारात्मक दृष्टिकोण वाला व्यक्ति जब कहता है कि जीवन सुखद है तो उसकी बात में और संतों की आनंद-उत्सव वाली बात में बड़ा फर्क है।

संत का जीवन कभी विपरीत में नहीं जाएगा, उसकी शांति, उसका आनन्द अखण्ड है। वह विपरीत तत्त्व में परिवर्तित नहीं होगा। जबकि आशावादी का

सुख, जल्दी ही दुख में परिवर्तित हो जाएगा। आप पूछते हैं सत्य क्या है, सभी बातें अपने आप में सच हैं, हम जो चुनना चाहें वह चुन सकते हैं। यहाँ तक कि सपना भी एक सच्चाई है, वह भी होता तो है। झूठ ही सही, मगर दिखने के लिए होना तो अनिवार्य है। हमारे सुख-दुख सपने जैसे झूठ ही सही, मगर उनके प्रभाव तो हमारे जीवन में पड़ रहे हैं, वे सत्य हैं। चाहे जो भी कारण बताए जा रहे हैं, वे बिल्कुल झूठ हों, परंतु वास्तविक परिणाम तो उसके आ ही रहे हैं।

एक रस्सी में सांप देखकर कोई डर के मारे भागा, कहीं पैर उलझ गया, गिर गया, ब्लड प्रैशर बढ़ गया, हार्ट अटैक पड़ गया, गड्ढे में गिरने से टांग टूट गयी; ये परिणाम तो सच ही हैं, सांप भले ही सच न हो। ठीक इसी प्रकार आशा और निराशा का चश्मा पहनकर जो देख रहे हैं, उनके परिणाम तो सच ही हैं। यद्यपि जो हम देख रहे हैं वह बिल्कुल झूठ, स्वप्नवत, मायावत है।

बुद्ध चर्चा करते हैं जीवन के दुखों की, चार आर्य सत्यों की। उपनिषद् के ऋषि गीत गाते हैं, परमात्मा के सच्चिदानन्द होने के, वे दुखों की चर्चा नहीं करते। बुद्ध आनन्द की बात नहीं करते। दोनों को मिला लो तब जाकर पूरी बात होगी, पूर्ण सत्य उजागर होगा। बुद्ध जो कह रहे हैं वह भी सच है। उपनिषद् के ऋषि जो कह रहे हैं वह भी सच है। पहले बुद्ध की बात समझनी होगी। क्योंकि यहाँ रोगका निदान होगा, इलाज और उपाय किया जायेगा उसे दूर करने का। तब उपनिषद् के ऋषियों की स्वास्थ्य वाली बात समझ आयेगी कि परमात्मा सच्चिदानन्द है। यह सारा जीवन एक महोत्सव है।

बुद्ध अधूरी बात करते हैं, पूर्वार्ध की; और उपनिषद् के ऋषि भी अधूरी चर्चा करते हैं, उत्तरार्ध की। दोनों को समझपूर्वक जीना आरंभ करो।

चौथा सवाल- ओशो का सन्देश है आनन्द-उत्सव। ओशोधारा के समाधि कार्यक्रमों में लोगों के जीवन में कैसे शांति, आनन्द और उत्सव का भाव विकसित हो रहा है, इस संबंध में कुछ कहें?

थोड़ी-सी भूमिका की बात समझ लें, फिर आपको जवाब दूंगा।

ओशो ने 'दि बिलॉभेड' नामक प्रवचनमाला में धर्म के सात रूप गिनाए हैं, चार झूठे व तीन वास्तविक। धर्म के चार मिथ्या रूप हैं, भयकेन्द्रित, लोभकेन्द्रित, विश्वासकेन्द्रित एवं विचारकेन्द्रित। धर्म के तीन सच्चे रूप हैं,

उपनिषद् की परिभाषा 'सद्चिदानन्द' के अनुसार सत्य, चैतन्य और आनन्द पर केन्द्रित। सत्य का अर्थ है जो शाश्वत है। पतंजलि जिसे कहते हैं- ऋतम्भरा, सुकरात की भाषा में सत्य की खोज, लाओत्से का ताओ, जीवन का परम नियम। बुद्ध जिसे कहते हैं- धम्म, जीवन के उस महा नियम की खोज धर्म है। धर्म का दूसरा रूप चित् से संबंधित है- चैतन्य का विकास, यानि बहिर्मुखी चेतना अब अंतर्मुखी हो; दूसरों पर ही प्रकाश न पड़े, दीया तले अंधेरा भी मिटे, रोशनी अपने पर वापिस आए, चैतन्य का विकास हो, फैलाव हो, ध्यान की साधना, योग की साधना, चित् की साधना है। धर्म का तीसरा रूप समाधि की साधना है, उस परमतत्व को जानो जिसे जानकर आनन्द में डुबकी लगती है।

हम चाहें तो इस सूची में एक और जोड़ सकते हैं, धर्म का चौथा रूप है भक्ति यानी प्रेम की साधना। 'सद्चिदानन्द' की जगह सत-चित्-प्रेम-आनन्द और भी पूर्ण परिभाषा होगी। तब चार प्रकार के वास्तविक धर्म हुए। भक्ति व ध्यान के ऊपर है समाधि। पतंजलि ने भी अपने आष्टांगिक मार्ग में समाधि को ध्यान के ऊपर रखा है। ओशो ने भी सर्वोपरि गिनाया है समाधि का धर्म।

अब आपका प्रश्न- आपने पूछा कि ओशोधारा में ओशो की देशना किस प्रकार से सिखाई जा रही है, आनन्द उत्सव में लोगों को कैसे ले जाया जा रहा है? समाधि-साधना के माध्यम से... ये 14 समाधियां, प्रत्येक छः दिन की, कुल 84 दिन की साधना है। इसमें हम चारों ही बातें सिखा रहे हैं। सत, चित्, प्रेम, आनन्द लेकिन आनन्द पर विशेष जोर है, कहीं साध्य को न भूल जाएं, साधन में न अटक जाएं। बाकी सब साधन हैं, प्रेम भी साधन है, सत्य भी साधन है, चैतन्यता भी साधन है। आनन्द लक्ष्य है। ओवरफ्लोइंग आनन्द ही उत्सव बनता है। आनन्द-उत्सव की साधना क्रमिक रूप से, बीज से लेकर सुगंध तक, जैसी ओशोधारा में हो रही है ऐसी और कहीं भी नहीं हो रही; अधिकांश लोगों ने एक छोटे हिस्से को ही चुना। कोई प्राणायाम सिखाता है, तो कोई आसन लगाना सिखाता है उसने एक हिस्से को चुन लिया। कोई ध्यान अर्थात् साक्षीभाव सिखा रहा, उसने बस एक ही अंग को चुना है और उसको ही सबकुछ मान लिया है। ओशोधारा में हम ओशो की विहंगम दृष्टि को आत्मसात किए हैं। एक 'पेनार्मिक व्यू' पूरे अध्यात्म को समाविष्ट किए

हुए हैं। 'ए-टू-जेड'.... ओशो ने अपनी एक किताब पतंजलि सूत्र का नाम रखा है 'दी अल्फा एण्ड दी ओमेगा' यानी शुरुआत से लेकर अन्त तक, बीज से लेकर फूल की सुगंध तक। सच पूछो तो आज ओशो-देशना जैसी ओशोधारा में फल-फूल रही है, वैसी और कही भी नहीं।

पांचवां सवाल- ओशो ने शांति व आनन्द के विषय में बहुत कुछ कहा है, क्या आप हमारे लिए कुछ मुख्य बातें बताएंगे?

बड़ा मुश्किल सवाल आपने पूछ लिया। ओशो ने जो कहा है सभी कुछ मुख्य है। फिर भी आपने पूछा है तो ओशो के तीन वचन ही सुनाता हूं-

1. सत्य की अंतिम परिभाषा है आनंद

एक बात ख्याल में रखना : आनंद सत्य की परिभाषा है। जहाँ से आनंद मिले, वहीं सत्य है। इसलिए तो हमने परमात्मा को 'सच्चिदानंद' कहा है। आनंद उसकी आखिरी परिभाषा है। सत्य से भी ऊपर, चित से भी ऊपर, आनंद को रखा है, 'सच्चिदानंद' कहा है। सत्य एक सीढ़ी नीचे, चित एक सीढ़ी नीचे, आनंद परम है। जहाँ से आनंद बहे, जहाँ से आनंद मिले-फिर तुम चिंता मत करना, सत्य के करीब हो। जैसे कोई बगीचे के करीब आता है तो हवाएं ठंडी हो जाती हैं, पक्षियों के गीत सुनाई पड़ने लगते हैं, शीतलता अनुभव होने लगती है—बगीचा दिखाई भी न पड़े तो भी अनुभव में आने लगता है कि राह ठीक है, बगीचे की तरफ पहुंच रहे हैं। ऐसे ही, जैसे ही तुम सत्य की तरफ पहुंचने लगते हो, आनंद झरता है, शीतल होने लगता मन, संतुलन आने लगता, सहिष्णुता बढ़ती है, सुख बढ़ता है! एक उमंग घेरे रहती है- अकारण! कोई कारण भी दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन अकारण एक उमंग है कि भीतर कोई यूं नाचे जा रहा है, कि रुकता ही नहीं!

(—ओशो, अष्टावक्र महागीता, भाग-1, प्रवचन नं.-2)

2. सुख दुख के द्वन्द्व से परे है शांति

जीवन में तीन आयाम हैं—दुख; जिसका अर्थ है पीड़ा, संताप, तकलीफ। सुख; जिसका अर्थ है प्रसन्नता, हर्ष, खुशी। आनंद से तात्पर्य है-ब्लिस, परम

मस्ती। सुख, दुख के विपरीत है। वे दो विपरीत ध्रुव हैं। आनंद के विपरीत कुछ भी नहीं है। ऐसी कोई अवस्था नहीं होती जो आनंद के विपरीत कही जा सके। तुम सुखी हो सकते हो, तुम दुखी हो सकते हो। यदि तुम आनंदित हो तो बस आनंदित हो। तुम अद्वैत में हो। आनंद में सब द्वैत मिट जाते हैं।

(-ओशो, वेदांत : सेवन स्टेप्स टू समाधि, प्रवचन नं.-5)

3. सदैव है आनंद

आनंद सदैव न हो तो आनंद नहीं है। दुख आता है, जाता है। सुख भी आता है, जाता है। जो न आता कभी और जो न कभी जाता है, उसका नाम ही आनंद है। जो हमारा स्वभाव है, स्वरूप है।... और जो व्यक्ति भी इस भीतर के स्वरूप में थिर हो जाता है, रमण को उपलब्ध हो जाता है, स्वयं में स्थित हो जाता है। स्वस्थ हो जाता है। उपनिषद् का ऋषि कहता है- ऐसा व्यक्ति सदैव आनंद में डूबा रहता है।

(-ओशो, निर्वाण उपनिषद्, प्रवचन नं.-10)

प्रवचन-2

मूर्तिपूजा से अमूर्त की ओर

प्रश्नसार—

1. जिन्दगी भर मूर्तिपूजा में उलझे लोग ठीक हैं?
2. मूर्ति पूजा—विज्ञान है या मात्र एक क्रियाकांड?
3. क्या अमूर्त का अर्थ निराधार शून्य होता है?
4. अमूर्त से मूर्त तक वापिस भी आना होता है?

प्रश्न- अधिकतम लोग मूर्तिपूजा से आध्यात्मिक यात्रा शुरू करते हैं और अन्त भी उसी पर करते हैं। जिन्दगी भर उसी में उलझे रहते हैं। ऐसा क्यों? आधुनिक युग में पूजा-प्रार्थना में लोगों का रस कम क्यों होता जा रहा है?

क्योंकि लोग बहुत बचकाने हैं। अधिकांश लोगों की मैंटल-ऐज बहुत कम है। देह तो विकसित हो जाती है, मनो-आयु विकसित नहीं हो पाती। इसलिए पहली बात, उसे आध्यात्मिक यात्रा न कहो। जैसे छोटे बच्चे गुड़िया-गुड्डों से खेलते हैं, ठीक वैसे ही मूर्तिपूजा वगैरह प्रौढ़ लोगों के खेल-खिलौने हैं। बच्चों के खिलौने प्लास्टिक, रबड़, कपड़ों के बने; सस्ते होते। बड़े लोगों के खेल जरा मंहगे होते—चाँदी-सोने के भगवान, हीरे-जवाहरात जड़े, स्वर्ण मन्दिरों में स्थापित। भीड़ को अध्यात्म की यात्रा में न कोई रस है, न साहस है; न उत्सुकता, न समझ अथवा गहन अभीप्सा है। भीड़ में बचकानापन होता है।

दूसरी बात, किसी खास देश-काल में जिस चीज की प्रतिष्ठा होती है; उस देश-काल में उस कार्य को लोग करते हैं, प्रतिष्ठा की खातिर, अध्यात्म की यात्रा के लिए नहीं। समझो, किसी जमाने में संन्यासी की, त्यागी की प्रतिष्ठा थी। उस समय बहुत लोग संसार त्यागकर संन्यासी हो जाते थे। धीरे-धीरे संन्यासी की इज्जत खो गई। फिर लोगों ने संन्यास लेना छोड़ दिया। आज से 50 साल पहले डॉक्टर और इंजीनियर बहुत प्रतिष्ठित थे। उस समय सब

विद्यार्थी डॉक्टर-इंजीनियर बनना चाहते थे। आज कम्प्यूटर साइंटिस्ट और सी. ए. की इज्जत है, अब छात्र डॉक्टर-इंजीनियर बनना नहीं चाहते। 25 साल पहले डैंटिस्ट की इज्जत नहीं थी, अब बढ़ गई है। पहले यह बताने में शर्म आती थी कि हम डैंटल कालेज में पढ़ रहे हैं। अब स्टूडैंन्ट शान से बताएंगे कि हमें डैंटल कालेज में एडमिशन मिला है।

आज से करीब 75 साल पहले जो लोग अभिनय करके गांव में खेल-तमाशा दिखाते थे, नाटक या नृत्य द्वारा लोगों का मनोरंजन करते थे, वे बहुत ही घटिया दर्जे के आदमी समझे जाते थे। उनकी कोई इज्जत न थी। किसी का बेटा नौटंकी में भर्ती हो गया तो वह शर्म से किसी को बताएगा भी नहीं कि 'मेरा सपूत नचैया-गवैया है'। यह बात ही अपमानजनक थी। फिर फिल्में आने के पश्चात् गायक की, अभिनेता की प्रतिष्ठा हो गई। आज कोई शान से बताएगा कि मेरा बेटा बालीवुड में हीरो है। समय-समय की बात है। कहावत है कि घूरे के भी दिन फिरते हैं। जिसकी प्रतिष्ठा है लोग उसकी तरफ भागते हैं। भारत में मूर्ति, मन्दिर, मस्जिद, तीर्थस्थल की प्रतिष्ठा रही है, तो लोग वहाँ जाते रहे। बड़े शहरों में प्रतिष्ठा के मापदण्ड बदल रहे हैं। आजकल रोटरी एवं क्लब और किटी क्लब जाना प्रतिष्ठित होता जा रहा है।

लोगों को न मन्दिर से मतलब था न क्लब से मतलब है। जहाँ जाने से उन्हें इज्जत मिले, वहाँ जाने को तैयार हैं। कम्युनिस्टों के लिए मास्को की यात्रा उतनी ही महत्वपूर्ण हो गई जैसे मक्का-मदीना की यात्रा थी। जिस भाव से लोग गीता-बाइबिल पढ़ते थे, उसी भाव से मार्क्स और फ्रायड की किताब पढ़ते हैं। फैशन बदल गया। ऐसा मत सोचना की मूर्ति पूजा करने वालों को मूर्ति से कोई मतलब था। पूजा करने वालों को समाज सम्मानित करता था, उनको आदर की दृष्टि से देखता था, इसलिए लोग मूर्ति पूजा करते थे।

रूस व चीन में नास्तिक समाज हो गए। चीन में लाखों मन्दिर थे बुद्ध के। सच पूछो तो बुद्ध के नाम से ही उर्दू का शब्द 'बुत' बना है। बुद्ध ने मना किया था कि मेरी मूर्ति न बनाना। लेकिन बुद्ध की इतनी मूर्तियां बनीं कि बुत का अर्थ ही मूर्ति हो गया। चीन के एक मन्दिर में 10 हजार मूर्तियां थीं बुद्ध की। जब कम्युनिज्म आया तो सारे मन्दिरों, मठों, आश्रमों को खत्म करके कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर बन गए। अब मूर्ति पूजा हास्यास्पद हो गई। वक्त-वक्त की बात है। नयी चीजें प्रतिष्ठित हो गईं।

अभी क्रिकेट का खेल फैशन में है, हर लड़के को शौक है कि वह

क्रिकेट खिलाड़ी बन जाए। आज से 50 साल पहले कोई क्रिकेट खेलना नहीं चाहता था। हो सकता है 10-20 साल बाद फिर उसकी इज्जत की नौका डूब जाए। हर चीज से ऊब पैदा हो जाती है। लोग क्रिकेट खेलना छोड़ देंगे। तब जो खेल प्रसिद्ध होगा, उसे अपना लेंगे। मूर्ति का खेल पुराना पड़ता जा रहा है—आउट ऑफ डेट! इसमें कुछ खास गंभीर मामला नहीं है।

कभी लम्बे बाल का फैशन था, महिलाएं लंबे बाल रखती थीं। छोटे बाल का फैशन आ गया तो छोटे बाल रखने लगीं। विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न फैशन आते-जाते रहते हैं। तुम इसे अध्यात्म की यात्रा नहीं, सिर्फ एक फैशन कहो। जहाँ साधु-संन्यासी की प्रतिष्ठा है, लोग पैर छू रहे हैं, दान दे रहे हैं उन्हें, तो वहाँ लोग संन्यासी बन रहे हैं। आप प्रतिष्ठा करना छोड़ दो... गांव में कोई साधु आए, कोई दर्शन को न जाओ, उनके लिए भोजन-पानी का इंतजाम न करो, उनके चरणों में फूल न चढ़ाओ, दान न दो, प्रवचनों में भीड़ न लगाओ, तालियां न बजाओ; तो शीघ्र ही कुछ दिन में पाओगे कि साधु-संन्यासी गायब हो गए। उन्होंने आपके गांव में आना ही छोड़ दिया।

मूर्ति पूजा अतीत में खूब प्रचलित रही। वर्तमान में नाममात्र को रह गई है। पश्चिम में 'संडे चर्च'... बस, हफ्ते में एक दिन हो आए औपचारिकता निपटा दी! प्रतिष्ठा मिलती है कि देखो फलां आदमी चर्च जाता है। उसे जीसस या मरियम की पूजा से कुछ लेना-देना नहीं है। इज्जत पाने का सवाल है। अगर लायन्स क्लब के मैम्बर बनने से इज्जत मिलती है तो लोग लायन्स

क्लब के मैम्बर बन जाते हैं। नाम के आगे 'लायन' लिखे लेते हैं। 'इंसान' होते हुए अपने-आप को 'सिंह' पुकारते हैं। यदि 'गधा क्लब' प्रतिष्ठित हो जाए तो यही लोग तुरंत 'डंकी' नाम जोड़ लेंगे। उसमें शान समझेंगे!

पुजारी की कभी इज्जत थी। लोग घर में मूर्ति रख लेते थे। घर में ही पूजा कर लेते थे। कभी माला और जनेऊ पहनने की इज्जत थी तो लोग पहनते थे। सिर मुंडाने और टीका लगाने की इज्जत थी तो लोग वैसा करते थे। अब टीका लगाने वाले को शहराती लोग ऐसे देखते हैं कि ये कहाँ से गांव के गंवार आ गए, तो लोगों ने लगाना बन्द कर दिया। फैशन बंद हो गया। भीड़ की मानसिकता का अध्यात्म से कुछ लेना-देना नहीं है।

प्रश्न-मूर्ति पूजा का आरंभ कैसे हुआ? क्या इसका एक पूरा विज्ञान था, जो हजारों वर्षों के अन्तराल में मात्र एक रुढ़िवादी क्रियाकांड बनकर रह गया? क्या इसके लिए धर्म गुरु जिम्मेवार हैं?

सभी जिम्मेवार हैं। तथाकथित धर्म गुरु और उनके तथाकथित शिष्य भी। सिर्फ धर्म गुरु जिम्मेवार नहीं। एक हाथ से ताली नहीं बजती। इन्हें गुरु बनाता कौन है? यह समाज की भीड़ ही तो इन्हें गुरु चुनती है। जनता की बचकानी मानसिकता को ये तृप्त करते हैं। बाजार का नियम है 'डिमाण्ड एंड सप्लाई' का। जिस चीज की मांग होगी उस चीज की पूर्ति की जाएगी। लोग जिन बचकानी चीजों की मांग कर रहे हैं, उनकी पूर्ति करने वाला कोई न कोई मिलेगा। इसलिए सिर्फ धर्म गुरुओं को ही नहीं जिम्मेदार ठहराया जा सकता, पूरा समाज इसके लिए उत्तरदायी है, क्योंकि समाज ही किसी को प्रतिष्ठित करता है, चाहे वे अभिनेता हों, राजनेता हों या धर्मनेता। समाज ही उन्हें चुनता है। और समाज चलता है लोभ से, भय से, अंधविश्वासों से।

यह अविकसित मनुष्यता लोभ और भय से संचालित की जा सकती है। धर्म गुरु इस बात को खूब अच्छी तरह समझ गए। जैसे सब माता-पिता जानते हैं, बच्चों में अगर व्यवस्था बनाए रखनी है, तो उनको डराओ अथवा प्रलोभन दो। कहो कि अगर तुमने ऐसा किया तो दण्ड मिलेगा। अच्छे नम्बर आ गए तो स्कूटर खरीद देंगे। बेटे को पढ़ाई में नहीं, स्कूटर में रस है। बेचारा स्कूटर के चक्कर में पढ़ाई भी कर लेगा। दण्ड और पुरस्कार की मानसिकता को उपयोग करते हुए समाज के ठेकेदार बड़े पुराने जमाने में यह बात समझ गए कि समाज को अगर नियमित व संचालित करना है, कब्जे में रखना है, इसके

मालिक बनकर बैठना है तो लोगों को डराना होगा या प्रलोभन देकर फुसलाना होगा। कुछ लोग हैं दुष्ट किस्म के... वे मानते ही नहीं। जेल जाने से भी नहीं डरते। उनके लिए मृत्यु के बाद 'नरक' यानि और भी बड़ा खतरनाक जेल बनाना पड़ा। कोई बात नहीं, अगर तुम यहाँ बच गए चलाकी से, यहाँ कानून और पुलिस की गिरफ्त में न आए, तो ऊपर कोई बैठा है बड़ा महान न्यायाधीश, उसकी नजरों से नहीं बच सकते। वह सर्वव्यापी है, सर्वद्रष्टा है। तुम्हारे एक-एक कर्म का हिसाब-किताब चित्रगुप्तजी रख रहे हैं। ऊपर जब जाओगे तब निपटारा होगा। तो जो लोग यहाँ नहीं डर रहे थे, लोभ में नहीं फंस रहे थे, उनके लिए मृत्यु के उपरांत नरक के भय और स्वर्ग के लोभ खड़े करने पड़े। अप्सराओं का, शराब के चश्मों का, कल्पवृक्षों का; चालाकीपूर्ण काल्पनिक इंतजाम करना पड़ा।

जिनको आप धर्म गुरु कह रहे है मैं उनको धर्म गुरु भी नहीं कहता। समाज-व्यवस्था को संचालित करने के लिए उन्होंने यह तरकीब खोज ली थी कि लोगों में अंधविश्वास भरो। मूर्ति पूजा का भी उन्होंने उपयोग कर लिया।

एक कारण और, मूर्ति पूजा का मनोविज्ञानिकों ने अध्ययन किया है। अतीत में जब मनुष्य आदिवासी था, छोटे-छोटे कबीलों में रहता था। एक परिवार में करीब 40-50 लोग रहा करते थे। बुजुर्ग एवं सबसे ज्यादा ताकतवर मुखिया की आज्ञा सब लोगों को मानकर चलनी पड़ती थी। मन ही मन लोग उससे चिढ़ते थे लेकिन मानकर उसी की चलनी पड़ती थी। बंदरों में वैज्ञानिकों ने अध्ययन किया है कि केवल सर्वाधिक शक्तिशाली बंदर ही बंदरियों के साथ संबंध बना सकता है। अन्य किसी को नहीं बनाने देता। सबको उसकी दादागिरी स्वीकार करनी होगी। उनमें झगड़ा होगा, मारपीट होगी, अंततः जो सबसे ज्यादा ताकतवर होगा, वही जीतेगा। और वह पूरे समूह पर अपनी रंगदारी दिखाता रहेगा। सारे कमजोर बंदर उससे चिढ़ते हैं। मगर उनकी मजबूरी है, उसका नियंत्रण एवं नेतृत्व स्वीकार करना पड़ता है। मनुष्य में भी इसी प्रकार की परम्परा अतीत में रही है, आदमी भी बंदरों से आया है।

बड़े-बड़े संयुक्त परिवार या कबीले की सारी व्यवस्था संभालने वाले सर्वाधिक ताकतवर व्यक्ति की आज्ञा सबको माननी मजबूरी थी। किसी की कोई स्वतंत्रता नहीं थी अपनी मर्जी से जीने की। सब उस व्यक्ति से आंतरिक-घृणा करते, किंतु बाहरी-आदर करते थे। फिर उसके मरने अथवा मारे जाने पर इन्हीं लोगों द्वारा उसकी मूर्ति गढ़कर पूजा की जाती थी, हृदय

में पश्चाताप की वजह से। राजा-महाराजाओं की कहानी पढ़ें, या तो उनके बेटे ने उन्हें कारागृह में डाल दिया, या मार डाला। औरंगजेब ने शाहजहां को जेल में बन्द कर दिया था। उसकी कहानी पता है, अन्य की जग-जाहिर नहीं हुई, लेकिन अधिकांश का यही हश्र हुआ। जो व्यक्ति बहुत ज्यादा डोमीनेट करेगा, उसके परिवार के लोग ही उसे मारेंगे। फिर एक अपराध बोध 'गिल्ट कांसशनेस' पैदा होता है। उस अपराध बोध का कम्पनशेषन करने के लिए पूजा शुरू होती है। डर भी लगता है कि हमने जिसे मार डाला, या जो अपने-आप मर गया, कहीं वह भूत-प्रेत बनकर न सताए! स्तुति करके फुसला लो, सम्मान दो, फूल चढ़ा दो, श्राद्ध कर दो, कि हमें परेशान न करना। हमारी रक्षा करना। पूजा की शुरुआत इस प्रकार से हुई। यह मूर्तिपूजा एक मृत-परम्परा बनकर रह गई। केवल धर्म गुरुओं के कारण नहीं, बल्कि संपूर्ण समाज की मानसिकता की वजह से। अपराध-बोध, भय, आशंका, अदृश्य शक्तियों द्वारा सुरक्षा की आकांक्षा, ये इसके पीछे कारण हैं।

यह तो हुई साधारण जन-मानस की बात। लेकिन कुछ असाधारण और अनूठा भी संग-संग विकसित हुआ। आपने पूछा है कि क्या इसका विज्ञान था, जो युगों के अन्तराल में मात्र एक रुढ़िवादी क्रियाकांड बनकर रह गया?

हां। वास्तविक मूर्तिपूजा के आध्यात्मिक अनूठे रहस्यों के संबंध में ओशो ने 'गहरे पानी पैठ' नामक प्रवचनमाला में विस्तृत व्याख्या की है। निवेदन है कि उसे पढ़ें। अत: फिलहाल मैं उसके विधायक पक्ष को छोड़ दे रहा हूं।

प्रश्न- क्या अमूर्त का अर्थ शून्य होता है? शून्य का कोई आधार नहीं होता। फिर भक्त की भक्ति और ज्ञानी का ज्ञान कहाँ टिकता है?

अमूर्त का अर्थ शून्य नहीं, सूक्ष्म होता है। बाहरी जगत स्थूल है, स्थूल आंख-कान से जिसे हम जानते हैं। आंतरिक लोक सूक्ष्म है जिसे अंतर्नेत्र या अत:कर्ण से जानते हैं। भीतर ओंकार, आलोक, दिव्य स्वाद या सुगंध का अनुभव अमूर्त है, अतीन्द्रिय कहलाता है। मूर्त एवं अमूर्त, सबको जानने वाला चैतन्य स्वयं शून्य है, उस में ही सब टिकता है। वह किसी में नहीं टिका।

आपने ठीक पूछा है कि शून्य का तो कोई आधार नहीं होता। क्योंकि शून्य सबका आधार है। यह पृथ्वी, चन्द्रमा, सूरज, ये तारे, नीहारिकाएं, आकाश गंगाएं... सब शून्य गगन में घूम रहें हैं। इन सबका आधार यह अंतरिक्ष है।

किन्तु स्वयं अंतरिक्ष का कोई आधार नहीं है। इसीलिए तो वह सबका आधार हो पाता है। अतः न पूछें कि भक्ति कहाँ टिकेगी, कि ज्ञान कहाँ टिकेगा?

हाँ, भक्ति के दो रूप हैं—गौणी भक्ति और परा भक्ति। चूंकि गौणी भक्ति अपरा है, मूर्ति पूजा से, स्थूल से शुरू होती है, इसलिए उसके टिकने के लिए तो आधार है। जब परा भक्ति तक पहुंच जाती है तो उसके टिकने के लिए आधार की जरूरत नहीं रह जाती। तब वह स्वयं ही विराट, शून्यवत, आकाशवत हो जाती है। शून्य में ही है परम-शांति, मुक्ति और मोक्ष।

प्रश्न- क्या अमूर्त से मूर्त तक वापिस भी आना होता है?

पहले हम मूर्त से अमूर्त की ओर, गौणी से परा की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर यात्रा करते हैं। फिर दोनों के परे महाशून्य में डूबते हैं। अंततः शून्य में ओतप्रोत होकर, उसकी सुवास को लपेटे, वापिस अमूर्त एवं मूर्त जगत में आते हैं। पुनः साधारण हो जीते हैं।

झेन फकीरों में कहावत है कि जब साधक साधना शुरू करता है तब पहाड़ पहाड़ नहीं रह जाते। नदियां नदियां नहीं रह जातीं। पेड़ पेड़ नहीं रह जाते। जब वह सिद्ध अवस्था पा लेता है फिर पहाड़ पहाड़ हो जाते हैं। नदियां नदियां हो जाती हैं। पेड़ पेड़ हो जाते हैं। बड़ी प्यारी कहावत है, वापिस लौटने पर वर्तुल पूरा होता है। तब स्थूल और सूक्ष्म का भेदभाव मिट जाता है। पदार्थ और परमात्मा का अंतर खो जाता है। शून्य व पूर्ण पर्यायवाची हो जाते हैं। नये साधक से कहते हैं, सूक्ष्म के बाद शून्य में रमो। फिर कहेंगे वापिस लौटो, अब पुनः संसार में जीयो। वापिसी पर आप दूसरे ढंग के होंगे, तभी वर्तुल पूरा होगा। अन्यथा बात अधूरी रह जाएगी।

बहुत लोगों ने स्थूल को पकड़ लिया, इसलिए प्रायः मैं मूर्ति पूजा के खिलाफ बोलता हूं। कुछ लोग हैं जिन्होंने भीतर के शून्य को पकड़ लिया, अतः कभी उनके भी खिलाफ बोलता हूं। कुछ लोग हैं संसार की जकड़ में हैं। कुछेक को परमात्मा ने पकड़ लिया है। मुक्त दोनों ही नहीं है। ऐसा समझें कि एक आदमी घर के भीतर बैठा चिल्ला रहा है कि मैं बाहर जाना चाहता हूं और उसे दरवाजा नहीं मिल रहा। यह आदमी बंधन में है। दूसरा आदमी घर के बाहर भटक गया है, उसे भीतर आने का मार्ग नहीं सूझ रहा। वह भी मजबूरी में बंधा है। एक बाहर नहीं जा सकता, दूसरा भीतर नहीं आ सकता। फिर बंधनों से मुक्त कौन है?

मुक्त वही है जो स्वतंत्रतापूर्वक अन्दर-बाहर आ-जा सके। मूर्त-अमूर्त, साकार-निराकार, सूक्ष्म-स्थूल इन दोनों में हम आसानी से आ-जा सकें, तब हम पूर्णतः मुक्त हुए। अनेक ध्यानस्थ लोग कहते हैं अब वापिस नहीं आना चाहते, संसार में हमें रस नहीं रहा, तन-मन से विरक्ति हो गई। आसक्ति तो बंधन थी ही, यह दूसरे प्रकार का बन्धन है, अब यह संसार से बचना चाहता है। मुक्त वह है जो न समाधि से बंधे, न संसार से बंधे। न मूर्त से बंधे, न अमूर्त से। न निराकार को पकड़े, न साकार से जकड़े। झेन शिष्य जब 20-25 साल की साधना के बाद जाकर गुरु से कहता है कि मैं शून्य हो गया, तब गुरु सिर पर डंडा मारकर कहता है अब इस शून्य को भी कचरे में फेंक दो।

जैसे विज्ञान ने पदार्थ की खोज की और गहराई में पाया की सिर्फ ऊर्जा है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वैज्ञानिक अब ऊर्जा में ही जीने लगा। वह भी लौटकर भोजन हमारे जैसा ही करता है, उससे पूछो-'आप क्यों स्थूल भोजन कर रहे हैं? आप तो कहते थे पदार्थ है ही नहीं, तो ऊर्जा को खाओ-पीयो।' यह प्रश्न मूढ़तापूर्ण होगा। नहीं, स्थूल शरीर के लिए तो यही भोजन चाहिए। सोने के लिए तो स्थूल बिस्तर तकिया चाहिए। यद्यपि पदार्थ के सभी रूप उस एक अरूप विद्युत ऊर्जा से बने हैं। तथापि रोटी और मिटट्री में से रोटी को ही खाना होगा। पदार्थ के अपने उपयोग हैं। हाँ, उस अमूर्त को जानकर, निराकार ऊर्जा को जानकर दृष्टिकोण बदल जाएगा पदार्थ के प्रति। इसका यह अर्थ नहीं है कि पदार्थ की उपयोगिता नष्ट हो गयी या उनके ऊपरी भेदभाव नष्ट हो गए। आंतरिक शाश्वत अद्वैत शक्ति को पहचानकर बाह्य परिवर्तनशील अनंतता की अभिव्यक्ति और उत्सव-आनंदपूर्ण हो गयी।

प्रवचन-3

मूर्त एवं अमूर्त के भी पार

प्रश्नसार—

1. क्या देवी-देवताओं के दर्शन कोरी कल्पनाएं हैं?
2. गुरु को ब्रह्म की साक्षात् मूर्ति क्यों कहते हैं?
3. आप मूर्ति-पूजा के पक्ष में हैं या विपक्ष में?
4. क्या निराकार शून्य तक जाना अनिवार्य है?

प्रश्न- अनेक लोग कहते हैं कि गहन भक्ति करते-करते उन्हें किसी देवी-देवता, गुरु या भगवान के दर्शन हुए। क्या ये कोरी कल्पनाएं हैं या इनमें कुछ सच्चाई भी है?

सपनों की भी अपनी सच्चाई होती है। फ्राइड के बाद पूरा मनोविज्ञान स्वप्न-विश्लेषण पर खड़ा हुआ है। सपने की सच्चाई को बिल्कुल इन्कार तो नहीं कर सकते। कमरे में टेबल-कुर्सी रखी है वैसी उसकी सच्चाई नहीं है। लेकिन सच्चाई के भी अपने-अपने तल होते हैं।

आप मन में विचारों को, हृदय में भावनाओं को, और समाधि में ओंकार व आलोक को जानते हैं। विचार, भाव या अनहद; ठीक टेबल-कुर्सी जैसे सत्य नहीं हैं। मगर आप उनको इन्कार तो नहीं कर सकते कि वे हैं ही नहीं। उनकी अपनी सच्चाई है। क्रोध के अपने परिणाम है, करुणा के अपने परिणाम है। वे परिणाम यथार्थ हैं। ठीक वैसे ही सपनों की भी अपनी सच्चाई है। ये सपने अचानक नहीं आ जाते इनके पीछे एक जीवन व्यवस्था का हाथ है। उसके कारण ही आते हैं। जिस व्यक्ति को सपने में गुरु के, देवी-देवताओं के दर्शन हो रहे हैं; एक बात तो पक्की है, इष्ट के प्रति उसका प्रेमभाव अचेतन तक में बैठ गया है। यह बात सुनिश्चित है कि इसके अचेतन में भक्ति भाव प्रवेश कर गया है। अब केवल ऊपर-ऊपर की औपचारिकता नहीं है। बहुत भीतर प्रवेश कर गया है। यह स्वप्न गहराई का सबूत है। इसलिए मैं सपने की सच्चाई को इन्कार नहीं कर रहा हूं।

हाँ, रुकना नहीं, अब इससे और आगे जाना है। महा-चेतन में, सुपर कांसशनैस में जाना है। जैसे जड़ों के नीचे जाने पर वृक्ष की ऊँचाई बढ़ती है, ठीक ऐसे ही जब कोई बात हमारे भीतर गहन अचेतन में प्रवेश करती है, हमारे अति-चेतन में ऊपर विकसित भी होती है। किसी वृक्ष को ऊपर बढ़ाना हो तो नीचे जड़ों को गहरे ले जाना पड़ेगा। अचेतन और अति-चेतन मन आपस में संयुक्त हैं। मूर्ति पूजा बड़ी गहराई में चली गयी, यह सपना इस बात का प्रतीक है कि उसके अचेतन में भी भक्ति-भाव उतर गया। एक कदम और उठाना है। स्वप्न-दृश्य से मुक्त होकर स्वप्न-द्रष्टा पर आना है। यह कौन है जो इस स्वप्न को देख रहा है, बस आखिरी छलांग लग जाएगी। तब मूर्ति पूजा ने अपना काम कर दिया। पहले मूर्ति ने सारे संसार में फैली हुई चंचल चेतना को एक आकार पर स्थिर किया, बड़ा काम हुआ। हजारों दिशाओं में भाग रहे मन को एक मूर्ति पर टिका दिया। इसका अर्थ हुआ एकाग्रता बहुत घनी हो गयी। धीरे-धीरे बात और गहरी गयी। आपके अचेतन में उतर गयी। स्वप्न तक में मूर्ति दिखायी देने लगी। चंचलता से एकाग्रता पर, फिर संलीनता पर पहुंच गए। अब अगला कदम होना चाहिए—शून्यता! अब यह मूर्ति भी विदा हो जाए। ओशो के कई प्रवचनों में रामकृष्ण परमहंस की कहानी आपने सुनी होगी कि तोतापुरी नामक एक वेदांती पंडित ने उन्हें आंतरिक काली-मां की मूर्ति से मुक्त कराया। तब कहीं परम ज्ञान की घटना घटी।

बाहर की मूर्ति ने हमें विभिन्न विषयों से मुक्त कराया। बड़ा काम हुआ। चंचल मन एकाग्र बना, हजार दिशाओं की बजाए हम एक दिशा में आए, फिर तल्लीनता, संलीनता में बदली, स्वप्न तक में मूर्ति प्रवेश हो गयी। अब आनी चाहिए शून्यता...यह स्वप्न भी विदा हो केवल देखने वाला ही रह जाए। और देखने का कोई विषय न हो। मात्र साक्षी चैतन्य- स्वयं के प्रति बोधपूर्ण!

प्रश्न-गुरु को ब्रह्म की साक्षात् मूर्ति कहा गया है, ऐसा क्यों?

मूर्ति-पूजा की बजाए गुरु-पूजा ज्यादा बेहतर है; क्योंकि बेचारी मूर्ति मृत है और तुम्हें मूर्ति पूजा से एक दिन छुड़ा न सकेगी। गुरु जीवित है पहले वह सहारा देगा और बाद में छीन भी लेगा। जैसे मां अपने छोटे बच्चे को अंगुली पकड़कर चलना सिखाती है, जब बच्चा चलने लगता है तो मां अपनी अंगुली छुड़ाने लगती है। बच्चे को अपने बलबूते पर चलने की प्रेरणा देती है। अगर बच्चा मां की अंगुली न पकड़कर कोई और सहारा लेता... समझो, अगर तीन चाक वाली ट्राई-सिकल पकड़कर चलता तो फिर बड़ी मुश्किल होती, छुड़ायेगा कौन? वह साईकिल तो अपने आप को नहीं छुड़ा सकती। बच्चा

अपने बलबूते पर चलेगा ही नहीं वह हमेशा सहारा मांगेगा। अगर चुनना हो साईकिल या मां का सहारा; तो मां का सहारा बेहतर, क्योंकि मां समझ-परखकर एक सीमा तक सहारा देगी। फिर सहारा छीन लेगी। ठीक वैसे ही मूर्ति और गुरु में चुनना हो तो गुरु को चुनना। गुरु अंगुली पकड़ायेगा, और ठीक समय पर अंगुली छुड़ा भी लेगा। यह काम मूर्ति नहीं कर सकती। इसलिए गुरु को साक्षात् ब्रह्म कहा गया है। गुरु अपनी अंगुली छुड़ाकर परमात्मा में डुबा देगा। छुड़ायेगा ही तब जब परमात्मा का तुम्हें ज्ञान होने लगे। कबीर ने कहा न–

गुरु-गोविन्द दोऊ खड़े, किस के लागूं पांए।
बलिहारी गुरु आपकी, गोविन्द दियो बताए॥

गोविन्द को बताकर वह खुद रास्ते से हट जायेगा, बेचारी पत्थर की मूर्ति यह न कर सकेगी। इसलिए परमात्मा का साक्षात् रूप गुरु को कहा गया है। साकार गुरु के प्रेम में पड़ना आसान है, निराकार परमात्मा से प्रेम कैसे करोगे? चलो गुरु के प्रेम से शुरू करो। धीरे-धीरे गुरु सहारा देने के बाद इशारा करेगा गोविन्द की तरफ। उस दिन आपके मन में धन्यवाद का भाव ही आयेगा... बलिहारी गुरु आपकी गोविन्द दियो बताए।

गुरु परमात्मा में प्रवेश का द्वार बनता है। ओशो की एक किताब है–'आई एम दि गेट'–जीसस क्राइस्ट का वचन है यह कि मैं एक द्वार हूँ। गुरु प्रभु का द्वार है। सिक्ख अपने मंदिर को गुरुद्वारा कहते हैं। इसलिए गुरु को साक्षात् ब्रह्म एवं ब्रह्म को निराकार गुरु कहा जाता है।

प्रश्न- आप मूर्ति-पूजा के पक्ष में हैं या विपक्ष में?

दोनों एक साथ- पक्ष में भी और विपक्ष में भी। इस पर निर्भर करता है कि मैं किससे बात कर रहा हूँ। अगर कोई नया व्यक्ति अभी-अभी अध्यात्म में उत्सुक हुआ है, मूर्त पर ही उसकी पकड़ हो सकती है, तो उसको मूर्ति पूजा के पक्ष में कहूंगा। चलो, यहीं से शुरू करो। मूर्ति के विभिन्न ढंग हो सकते हैं। यहाँ मंच पर ओशो की तस्वीर लगी है, हम गले में माला पहने हैं ओशो की, यह भी तो मूर्ति का ही एक रूप है। प्लास्टिक का लाकेट मूर्ति का आधुनिक रूप है। आकार से प्रेम आरंभ कर सकते हो, कोई हर्जा नहीं, आकार से प्रेम करो। बस स्मरण रहे, यहाँ तक सीमित मत रहना।

शुरुआत करने के लिए मैं मूर्ति के बिल्कुल पक्ष में हूं। लेकिन अगर कोई वहीं अटक जाए, आगे न बढ़े तब मैं उसके विपक्ष में हूं। इसलिए मेरी बात से कंफ्यूज्ड, भ्रमित नहीं होना। कभी मैं पक्ष में बोलूंगा, कभी विपक्ष में बोलूंगा, दोनों बातें अपनी-अपनी जगह सही हैं।

एक छोटे बच्चे को स्कूल में सिखाते हैं– ग-गणेश का, आ-आम का, इ-इमली का। 25 साल का युवक होने के बाद भी यदि वह ऐसे ही बोले- एक-एक अक्षर अखबार में पढ़े– ग-गणेश, आ-आम, इ-इमली, तो अखबार पढ़ ही नहीं पायेगा। एक वाक्य पढ़ना मुश्किल हो जायेगा। कुछ समझ में नहीं आयेगा बीच में इतने सारे गणेश, आम, इमली, गधे, बकरे, ऊँट, हाथी और पता नहीं क्या-क्या आ जायेंगे! कुछ समझ में नहीं आयेगा।

छोटे बच्चे को आ में कोई इन्ट्रेस्ट नहीं है आम में जरूर रस है। आम का चित्र देखकर वह प्रभावित होता है। बगल में छोटा सा 'आ' लिखा है उसके साथ वह एसोसिएट हो जाता है। इमली उसे बहुत अच्छी लगती है बगल में एक अक्षर लिखा हुआ है 'इ' उस पर उसकी नजर पड़ती है। उसने अक्षर देखने के लिए किताब नहीं खोली, उसे तो इमली का चित्र देख मुंह में पानी आ जाता है। लेकिन साथ में 'इ' उसके मन में बैठता जाता है। पहली, दूसरी, तीसरी क्लास में बच्चों की किताब में चित्र अधिक होते हैं। धीरे-धीरे चित्र कम होते चले जाते हैं। अन्ततः चित्र बचते ही नहीं, गणितीय सूत्र आ जाते हैं। अब कोई पूछे की आप चित्रों के पक्ष में हैं कि विपक्ष में? तो कहना पड़ेगा–दोनों बातें युगपत। निर्भर करता है कि किससे बात कर रहे हैं। पक्ष में भी कहना होगा, कभी विपक्ष में भी कहना होगा। अलग-अलग संदर्भ में भिन्न-भिन्न साधकों के लिए भिन्न-भिन्न बातें होंगी। इसी वजह से शास्त्र काम नहीं आते, गुरु से साधना में सहयोग मिल पाता है। मूर्ति से शुरुआत ठीक, फिर गुरु के प्रति श्रद्धा, फिर गोविन्द का ज्ञान, ओंकार से पहचान, और अंततः परमात्मा के संग अद्वैत में डूबने पर समापन।

प्रश्न– अनेक भक्त अपने इष्ट देव के साकार रूप से जुड़े रहे उन्होंने कभी निराकार की बात नहीं की फिर भी उन्होंने परमात्मा को पा लिया। क्या मूर्त से अमूर्त और फिर शून्य तक जाना अनिवार्य है?

हाँ, जाना अनिवार्य है। किंतु कई भक्तों ने उसकी चर्चा नहीं की। क्योंकि जिनसे वे बात कर रहे थे वे समझने में असमर्थ थे। परम ज्ञानियों की बातें हमेशा इस ख्याल से समझना कि किस संदर्भ में, किससे कहीं गयी हैं? विश्वविद्यालय के गणित के प्रोफेसर को हम के.जी. स्कूल के बच्चों के सामने लाकर कहें कि इनको गणित समझाओ, तो उस महान गणितज्ञ को भी उन बच्चों की भाषा में ही बोलना पड़ेगा, यह उसकी मजबूरी है। इससे तुम यह निष्कर्ष मत निकालना कि उसका ज्ञान यहीं तक सीमित है।

बहुत से भक्तों ने निराकार ईश्वर की चर्चा नहीं की। इसका कारण है–भीड़ की बचकानी मानसिकता, धर्म के के.जी. स्कूल के बच्चे! वे गौणी भक्ति को समझ नहीं पा रहे, पराभक्ति को क्या खाक समझेंगे? इसलिए बात नहीं की। आपने पूछा है क्या मूर्त से अमूर्त और फिर शून्य तक जाना अनिवार्य है? हाँ, बिल्कुल अनिवार्य है।

भक्त भी मूर्त से अमूर्त तक, फिर शून्य तक जाते हैं, चाहे उसकी चर्चा करें या न करें। फिर बाहर संसार में आकर निश्चित ही मूर्त का भी उपयोग करते हैं। मैं कुछ साल पहले जबलपुर में, नर्मदा नदी के किनारे एक कबीरपंथी साधु के आश्रम में गया था। मुलाकात से वे बहुत प्रसन्न हुए और मुझे भीतर ले गए; वहां ओशो के संपूर्ण साहित्य की लायब्रेरी दिखाई। कबीर के ऊपर ओशो की सारी प्रवचनमालाओं की कैसेट्स उनके पास थीं। मैंने पूछा, आश्रम के बाहर गेट पर शंकर जी का मन्दिर किसने बनवाया है? आप खुद ओशो के प्रेमी, कबीर के शिष्य हैं, निर्गुण में भरोसा करते हैं!

वे बोले, क्या करूं... इसलिए आश्रम के गेट के बाहर बना दिया है मंदिर, ताकि फिजूल के लोग भीतर न आएं। परंपरावादी लोग नर्मदा नदी से जल लेकर आते हैं, शंकरजी पर डालकर वहीं से चले जाते हैं। अगर भीतर मन्दिर बना हो तो वे व्यर्थ मेरा दिमाग खायेंगे। इतने बचकाने लोगों से क्या बात करूं? इसलिए बाहर उनके लिए मन्दिर बना दिया।

यह अच्छी तरकीब इन्होंने निकाली। इनके आश्रम के बाहर मन्दिर को देखकर कोई लौट जाए तो वह समझेगा यह साधु भी मूर्ति पूजक है। उस साधु ने न कभी मूर्ति पूजा की, न ही उस मन्दिर में वह कभी गया। वह पर्यटकों से बचने के लिए कवच की भांति है। बहुत से भक्तों ने इस प्रकार का आचरण किया। समाज स्वीकृत व्यवहार किया। समाज बहुत बचकाना है। कौन उनसे संघर्ष और निरर्थक बकवास करे!

परम भक्त रामानन्द जी के शिष्य हुए कबीर, रैदास और अन्य 12 सिद्ध; सभी निगुर्णवादी! मगर रामानन्द जी फिर भी दशरथ-पुत्र राम की पूजा करते रहे। कबीर साहब ने अनेक बार उनको टोका। कबीर कहते कि हे गुरुदेव आप कैसे विचित्र हैं, कब तक राम की पूजा करते रहेंगे? लेकिन रामानन्द ने राम की पूजा नहीं छोड़ी। उनके अपने कारण थे। जिस समाज में जी रहे हैं, वहाँ अगर कुछ भी काम करना है, तो एक बाहरी आवरण ऐसा रखना होगा ताकि भीड़ से अनावश्यक संघर्ष न हो। चलो कोई हर्जा नहीं, ऊपर-ऊपर से राम मन्दिर जाकर फूल चढ़ा आए। जो लोग निकट आयेंगे, उनमें से चुन लेंगे। जो प्रतिभाशाली व समझदार हैं, धीरे-धीरे उनको समझा देंगे कि असली राम तुम्हारे भीतर है। बाहर के राम को उन्होंने छोड़ा नहीं।

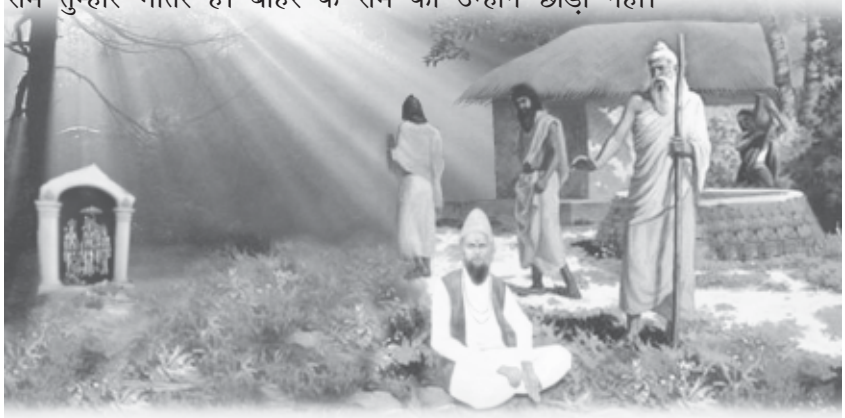

बहुत से भक्तों ने इन कारणों से बाह्य-आडंबर के रूप में गौणी भक्ति को जारी रखा। पराभक्ति में डूबकर, निराकार को जानकर भी साकार को नहीं छोड़ा। अमूर्त-अरूप को जानकर भी मूर्त-रूप की उपासना जारी रखी।

एक बात और, उपनिषद् के ऋषि संभूत ब्रह्म और असंभूत ब्रह्म की चर्चा करते हैं–प्रकट ब्रह्म और अप्रकट ब्रह्म। सत्य एक ही है वही वृक्ष में कभी प्रकट होता है वही बीज में अप्रकट भी होता है। इसलिए दोनों में भेद नहीं। बीज में वृक्ष की संभावना सुप्त है, वृक्ष में पुनः बीज बनाने की क्षमता छिपी है। आकार और निराकार में भेद गिर जाने पर परम अद्वैत घटता है। संभूत ब्रह्म और असंभूत ब्रह्म दोनों एक ही हैं, अगर यह बात ख्याल में आ गयी फिर क्या फर्क पड़ता है, चलो मूर्ति पूजा ही सही! बच्चे खिलौनों से खेल रहे हैं, खेलने दो। माना कि तुम बड़े हो गए, जान गए कि यह छोटी सी प्लास्टिक की कार किसी काम की नहीं, इससे कोई यात्रा नहीं हो सकती, फिर भी जन्मदिन पर उपहार में दे जाते हो। बच्चे को सचमुच की कार मत दे देना, वह कृत्य करुणापूर्ण नहीं होगा, दुर्घटना घट जाएगी। बस, आज इतना ही।

प्रवचन-4

निराकार, निरंकार और ओंकार

प्रश्नसार—

1. ओंकार-रहस्य को जानने हेतु गुरु जरूरी है?
2. निराकार, निरंकार और ओंकार में फर्क है?
3. क्या नाद-नूर से ही ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई?
4. ओशोधारा में ओंकार पर इतना जोर क्यों?
5. ओंकार के बिना समाधि-सम्बोधि असंभव हैं?
6. क्या ओंकार सारी साधनाओं का शिखर है?
7. तुरीयावस्था और समाधि में क्या अन्तर है?

ओंकार के रहस्य को जानने के लिए गुरु की जरूरत क्यों है?

छोटी-छोटी चीजों के लिए तो हमें गुरु की जरूरत पड़ती है। छोटा बच्चा भाषा सीखता है, मां से, पिता से, भाई-बहनों से। चारों तरफ उसके जो लोग बोल रहे हैं, वे उसके गुरु हो गए। गणित और भूगोल सीखने के लिए स्कूल में शिक्षक की जरूरत पड़ती है। फिजिक्स और कैमिस्ट्री सीखने के लिए अध्यापक चाहिए। हर चीज सीखने के लिए तो सहारा चाहिए। यहाँ तक कि दो पैरों पर खड़े होने के लिए अगर कोई न सिखाए तो छोटा बच्चा कभी न सीखेगा। जब छोटी-मोटी स्थूल बातें सीखने के लिए भी मार्गदर्शक चाहिए तो प्रभु का सूक्ष्म ज्ञान कैसे बिना मदद के हो सकता है? आप ही थोड़ा सोचें।

निराकार, निरंकार और ओंकार में क्या फर्क है?

ओंकार अर्थात् अनहद नाद। निराकार का अर्थ जिसमें कोई आकार न हो। रूप और आकृति जहाँ पर नहीं हैं, भीतर की उस शून्य चेतना को निराकार कहा जाता है। शरीर का एक आकार है बर्फ जैसा ठोस। मन का भी एक आकार है तरल पानी जैसा बदलता हुआ। उस निराकार के भी भीतर केन्द्र में वाष्प रूपी सर्वव्यापी ओंकार की ध्वनि गूँज रही है। मध्य युग के संतों ने एक नया शब्द गढ़ा 'निरंकार'। निरंकार का अर्थ है निराकार में गूँजता हुआ ओंकार। बड़ा प्यारा शब्द बनाया। इसका तात्पर्य तो शब्द से ही सुस्पष्ट है।

उसमें शून्यता का भाव आ गया तथा पूर्णता का भी भाव आ गया।

बुद्ध जिसे शून्य कहते हैं और शंकर जिसे पूर्ण परमात्मा कहते हैं, वे दोनों बातें एक साथ आ गयीं। उस महाशून्य में पूर्णध्वनि गूँज रही है। निराकार में गूँजता हुआ ओंकार ही एक शब्द में निरंकार कहलाता है।

अध्यात्म में नाद और नूर से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति बताई जाती है, इस पर थोड़ा और प्रकाश डालें?

ये चेतना के विभिन्न आयाम हैं नाद और नूर, आनन्द और प्रेम, अमृत चैतन्य, प्रेम, आनंद, इत्यादि। चेतना का सघन रूप शक्ति बनता है। वैज्ञानिक कहते हैं शक्ति का सघन रूप पदार्थ बनता है। पदार्थों में शक्ति मूल तत्व है। लगभग सौ तत्वों से मिलकर विभिन्न यौगिक बनते हैं, और बहुत प्रकार के रासायनिक यौगिकों व मिश्रणों द्वारा फिर सारे जगत की उत्पत्ति होती है।

अगर हम पीछे की तरफ चलें तो पदार्थ बना है ऊर्जा से, शक्ति से। आइंस्टीन का फार्मूला आपने सुना होगा- मैटर को एनर्जी में रूपांतरित करने का सूत्र। संभवतः वैज्ञानिक और गहरी खोज में भविष्य में जाएंगे, काम तो शुरू हो गया है, तब एक दिन सवाल उठेगा एनर्जी किस चीज से बनी है? उस दिन पता चलेगा वह चेतना का सघन रूप है, जो कि नाद और नूर से ओतप्रोत है। उस निराकार में ओंकार गूँज रहा है।

आज से लगभग 150-200 साल पहले वैज्ञानिकों ने पदार्थ की खोज शुरू की, कि पदार्थ किस चीज से बने हैं? पता चला तत्वों का। फिर तत्वों का पता लगाया, वे कैसे बने हैं? अणु का पता चला, फिर परमाणु का पता चला,

फिर परमाणु में इलैक्ट्रान-प्रोट्रान का पता चला, सब-एटामिक पार्टिकल्स का पता चला। फिर अन्ततः पता चला कि तीव्र गति से घूमती हुई ऊर्जा मात्र है। पदार्थ जैसी कोई चीज वस्तुतः है ही नहीं।

वैज्ञानिक अपने आप को मैटिरियलस्टिक कहा करते थे– पदार्थवादी, भौतिकवादी। अब यह नाम बदल देने चाहिए। उनकी स्वयं की खोज से सिद्ध हो गया कि पदार्थ जैसी कोई चीज है नहीं। सिर्फ विद्युत ऊर्जा है। तीव्र गति से घूमती हुई शक्ति है बस। जो पुरानी भाषा में 'आदि-शक्ति' कहलाती है।

मैं समझता हूँ निकट भविष्य में खोजबीन शुरू होगी कि ऊर्जा किस चीज से बनी है? उस दिन पता चलेगा कि वह चेतना से बनी है। चेतना में अनहद नाद गूँज रहा है। वह प्रकाश स्वरूप है। इसलिए कहा जाता है कि नाद और नूर से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई।

ओशोधारा में ओंकार पर इतना जोर क्यों है? अध्यात्म के अनेक मार्गों में से ओंकार को ही क्यों चुना गया?

क्योंकि अध्यात्म का यह सुगमतम मार्ग है। अन्तर्यात्रा करने के लिए ओंकार में डूबने से सुगम और कुछ भी नहीं। परमात्मा के अन्य आयामों में डूबना कठिन है। हाँ, एक बार ओंकार में डुबकी लगने लगी, उसके प्रति प्रीति उत्पन्न हो गई, तब परमात्मा के अन्य आयामों में प्रवेश आसान होता जायेगा।

क्रमशः शुरुआत करने के लिए ओंकार सर्वाधिक सुगम है। परमात्मा के अनंत-अनंत आयाम हैं। सब एक से एक सूक्ष्म हैं। सब सूक्ष्म आयामों में भी जो सर्वाधिक स्थूल है, वह ओंकार की अनाहत-ध्वनि ही है। इसलिए ओशोधारा में विशेष रुप से ओंकार को चुना गया।

कुछ लोग हैं जो प्रभु के प्रकाश में लीन हो सकते हैं, कुछ साधक हैं जो परमात्मा के साक्षी चैतन्य रूप में डूब सकते हैं, कुछ भक्त हो सकते हैं, लेकिन उनकी गिनती थोड़ी है। ओंकार में लगभग सभी डूब सकते हैं।

ध्वनि में डूबना आसान है। संगीत सुनते-सुनते हर कोई झूमने लगता है, मस्त हो जाता है। केवल मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी भी ध्वनि से प्रभावित होते हैं। पेड़-पौधे तक ध्वनि से प्रभावित होते हैं। ध्वनि आधारभूत है। क्योंकि ओंकार से ही सब निर्मित है। इसलिए ओंकार से अन्तर्यात्रा करना सुगम है।

मुझे याद आता है भगवान बुद्ध का वचन, वे कहते हैं– हजारों शास्त्रों को पढ़ने की बजाए, सैकड़ों प्रवचन सुनने की बजाए, उस एक 'अक्षर' को सुनो,

जिसे सुनकर शांति मिलती है। ऐसा नहीं कि ओंकार पर केवल ओशोधारा में जोर दिया जा रहा है, उपनिषद् उठा कर पढ़ो! कोई भी उपनिषद् और तुम पाओगे ओंकार-श्रवण पर ही सर्वाधिक जोर है।

आत्मपूजा उपनिषद् में कुल 17 पंक्तियां हैं। उसकी पहली पंक्ति है, 'वह ओम् है।' दूसरी पंक्ति है– 'ओम् का स्मरण ध्यान है।' इस पर ओशो ने बड़ी प्यारी प्रवचनमाला दी है, उसका नाम है- 'दि अल्टिमेट अल्केमी' अर्थात् परम रसायन। एक छोटी सी पंक्ति में परमात्मा का वर्णन हो गया। छान्दोग्य उपनिषद् पढ़ो, कि कठोपनिषद् या निर्वाण उपनिषद्, सर्वत्र ओंकार की ही महत्ता प्रतिपादित की गई है।

महावीर ने ईश्वर को हटा दिया, लेकिन ओंकार को नहीं हटाया। बुद्ध ने तो परमात्मा व आत्मा दोनों को ही इन्कार कर दिया, लेकिन ओंकार को इन्कार नहीं किया। उन्होंने ईश्वर से भी ज्यादा महत्व नाद का स्थापित किया।

भारत में चार बड़े धर्म पैदा हुए हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म और सिक्ख धर्म। चारों में बड़े मत-मतान्तर हैं। किन्तु एक बात में सब राजी हैं कि साधक जब स्वयं के भीतर डूबता है तो ओंकार की ध्वनि को सुनता है। इससे स्पष्ट है कि ओंकार की ध्वनि आत्मा और परमात्मा की धारणा से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है।

गुरुग्रंथ साहब पढ़ो, ओंकार के ही गुणगान सभी गुरु साहिबान करते हैं- एक ओंकार सतनाम। भारत के बाहर जो धर्म पैदा हुए– यहूदी, मुसलमान, ईसाई और पारसी धर्म– उन चारों में भी ओम् की जगह ओमीन और अमीन का महत्व हो गया। वे भी ओम् के ही रूप हैं।

ओंकार को इसीलिए चुना गया। इससे ज्यादा सुगम अध्यात्म का कोई दूसरा मार्ग नहीं हो सकता। जगत के सारे धर्मों का सारभूत तत्व एक ही है।

क्या ओंकार के बिना समाधि और सम्बोधि संभव नहीं?

संभव है; किंतु यह प्रश्न ऐसा है जैसे कोई पूछे कि नदी पर एक पुल बना हुआ है, क्या पुल के उस पार जाने के लिए पुल के अलावा कोई अन्य मार्ग नहीं हैं?

जरूर हैं। अगर आप अच्छे तैराक हैं तो तैरकर खतरनाक नदी को पार कर सकते हैं। अगर आपको नाव में पतवारें चलाना आता है, पतवारों से उस पार पहुँच जाइए। हैलीकोप्टर से पहुँच सकते हैं, हवाई जहाज से पहुँच सकते हैं। लेकिन याद रखना, जब पुल बना हुआ है जाने के लिए, तो वही सर्वाधिक सुगम मार्ग है।

समाधि के कई उपाय हो सकते हैं। लेकिन जबओंकार में डूबना इतना सहज है, तो अन्य उपाय नम्बर दो पर ही आयेंगे। सर्वप्रथम ओंकार में डुबकी साधो, और अभी तक मैंने ऐसा व्यक्ति नहीं देखा जो ओंकार में नहीं डूब पाता हो। स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े; सब लोग ओंकार में डूब पाते हैं। आपका प्रश्न है कि क्या ओंकार के बिना समाधि एवं संबोधि संभव नहीं? थ्योरीटिकली संभव है, किंतु प्रैक्टिकली बहुत मुश्किल है; टैक्नीकल कठिनाइयां हैं।

क्या ओंकार सारी साधनाओं का शिखर है? क्या भक्ति, ध्यान, जप, तप, मंत्र, तंत्र, योग, झेन, आदि सभी साधनाएं ओंकार तक ले जाती हैं?

निश्चित रूप से। पूछा है आपने भक्ति के बारे में– पढ़ो शांडिल्य का भक्ति सूत्र, ओशो की किताब 'अथातो भक्ति जिज्ञासा'। उसका पहला ही सूत्र है–ओम् अथातो भक्ति जिज्ञासा। और इसे समझाते हुए ओशो ने कहा इस पहले अक्षर को जिसने समझ लिया उसने सब समझ लिया। समझने को कुछ और बचा नहीं। जो नहीं समझ पाया उसके लिए शांडिल्य आगे सूत्र कहेंगे।

ठीक इसी प्रकार का प्रवचन 'एक ओंकार सतनाम' के सूत्र समझाते हुए ओशो ने दिया। जपुजी साहब पर नानक की वाणी की व्याख्या करते हुए 'एक ओंकार सतनाम' इन तीन शब्दों को समझाते हुए ओशो ने कहा कि पूरा आदि ग्रंथ इन तीन शब्दों में समा जाता है। उस एक परमात्मा तक ही पहुंचना है, चाहे भक्ति के मार्ग से चलो चाहे ध्यान के मार्ग से।

तुमने पूछा है मंत्र के बारे में– सभी मंत्र क्षुद्र मंत्र कहे जाते हैं, ओम् को महामंत्र कहा जाता है। वह बीज मंत्र है। शेष गायत्री मंत्र और नमोकार मंत्र

सभी मंत्र छोटे-छोटे मंत्र हैं। महामंत्र तो सिर्फ एक ही है 'ओंकार', बीज मंत्र केवल एक ही है 'ओंकार'। वह 'मास्टर-की' है- चाबियों की चाबी!

तंत्र के बारे में आपने पूछा– भगवान शिव ने पार्वती को 'विज्ञान भैरव तंत्र' में जो 112 विधियां कही हैं उनमें सबसे बड़ी गिनती अनहद नाद को सुनने की विधियों की है। इससे सुस्पष्ट है कि भगवान शिव का जोर अनहद नाद पर सर्वाधिक है। नाद-श्रवण के पश्चात् नम्बर दो व तीन पर आती हैं श्वास और प्रकाश-दर्शन संबंधी ध्यान विधियां।

पूछी आपने योग की बात– पतंजलि योग सूत्र पढ़ना, जहाँ पतंजलि परमात्मा का वर्णन करते हैं, वहाँ सिर्फ तीन शब्दों में कहते हैं– 'तस्य वाचक प्रणवः'। ओंकार की ध्वनि उसका वाचक है, उसका नाम है। सार सूत्र में बात आ गयी कि लक्ष्य क्या है संपूर्ण योग साधना का।

पूछा आपने झेन साधना के बारे में– पढ़ो किसी भी झेन संत की कहानी, पाओगे 'एक हाथ की ताली' ही उनकी साधना का केन्द्र बिन्दु है। अनाहत का अर्थ बिना चोट की आवाज, बिना टकराहट के जो उत्पन्न हुई, 'एक हाथ की ताली' से वही अर्थ है उनका-'दि साउन्ड ऑफ वन हैंड क्लैपिंग'।

नानक कहते हैं 'एक ओंकार सतनाम,' यह एक क्यों? चूंकि वहाँ दो नहीं हैं, इसलिए वहाँ चोट हो नहीं सकती। आहत होने के लिए कम से कम दो तो होने चाहिए ना?

भारत के अधिकतर शास्त्र ओम् से आरंभ एवं ओम् शांतिः शांतिः शांतिः पर समाप्त होते हैं। पश्चिमी धर्म भी अपनी प्रार्थना का अंत ओमीन या अमीन से करते हैं।

एक हाथ की ताली, अनहद नाद या एक ओंकार सतनाम; समस्त साधनाओं का लक्ष्य है, शिखर है। सभी साधनाएं उसी ओर ले जाती हैं।

तुरीया अवस्था और समाधि में क्या अन्तर है?

कोई अन्तर नहीं, कहने के अलग-अलग ढंग हैं। तुरीया अवस्था का मतलब है चौथी अवस्था। तीन अवस्थाएं हम सब जानते हैं। दिन में जागृति, रात में स्वप्न, तीसरी अवस्था सुषुप्ति यानि स्वप्न रहित निद्रा- इन तीन अवस्थाओं से हम परिचित हैं। इन तीनों के पार चौथी अवस्था है समाधि की। ओंकार में तल्लीनता की, परमात्मा से एकात्मीयता की।

आज इतना ही। ओम् शांतिः शांतिः शांतिः!

प्रवचन-5

आध्यात्मिक परतंत्रता क्या है?

(मुम्बई में 15.8.2006 को स्वतंत्रता दिवस एवं कृष्ण-जन्माष्टमी के अवसर पर दिए प्रवचन का प्रथम अंश)

1. मनुष्य का जन्म—दासता में
2. शरीर की सात बेड़ियां
3. देह मालिक या सेवक?
4. मन की सूक्ष्म गुलामियां
5. वैचारिक परतंत्रता
6. विज्ञापनों की कैद में
7. आदमी—कुएँ का मेंढक

1. मनुष्य का जन्म—दासता में

आज 15 अगस्त के अवसर पर देश की राजनीतिक आजादी हेतु आप सबको बधाई देता हूँ तथा कुछ और गहरी स्वतंत्रता के बारे में आपसे चर्चा करना चाहूँगा। सिर्फ राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक आजादी ही सब कुछ नहीं है; वह तो होनी ही चाहिए किंतु और भी गहरी परतंत्रताएं हैं जिनमें हम घिरे हुए हैं। उन परतंत्रताओं को हम देखें, उन गुलामियों को हम पहचानें तो फिर उनसे छूटने का उपाय भी हो सकता है। सबसे दुर्भाग्य की बात तो यह है कि वे सूक्ष्म गुलामियां हमें पता भी नहीं चलतीं, उन जंजीरों को हम आभूषण मानकर जीते हैं। उस संबंध में थोड़ी सी चर्चा शुरु करने से पूर्व आइये, मा प्रिया के द्वारा गाया हुआ एक बहुत सुन्दर देश-भक्ति गीत सुनते हैं। आप भी साथ-साथ गाइये—

हरा-भरा हिंदुस्तान चाहिए, हमको भारत महान चाहिए;
क्रांति ला दें कुशलता में जो, हमको ऐसे इन्सान चाहिए।
जो वतन के लिए मर मिटें, हमको ऐसे जवान चाहिए;
साल भर जो उगाएं फसल, हमको ऐसे किसान चाहिए।
संत नानक-कबीरा से हों, तुलसी-मीरा के गान चाहिए;
नेता जाति-वर्ग पोषक नहीं, गांधी-से धर्म-प्राण चाहिए।
दुःख का जो निवारण करें, बुद्ध-से ज्ञानवान चाहिए;
कर्म का योग बतलाएं जो, कृष्ण जैसे भगवान चाहिए।
सब सुखी स्वस्थ समृद्ध हों, हमको ऐसा विज्ञान चाहिए;
धर्म का मर्म समझाएं जो, ओशो-से महाप्राण चाहिए।

कर्म का योग बतलाएं जो, कृष्ण जैसे भगवान चाहिए....जन्माष्टमी के इस उत्सव में, भगवान कृष्ण की कथा तो आप सब को पता ही है, मामा कंस की कैद में उनका जन्म हुआ था। ऐतिहासिक रूप से ऐसा सचमुच में हुआ अथवा नहीं, यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। लेकिन यह बात बड़ी प्रतीकात्मक महत्व की है–काव्यात्मक; हम सब का जन्म परतंत्रता में होता है। हम एक अदृश्य जेल अपने आस-पास लेकर पैदा होते हैं और प्रत्येक व्यक्ति को फिर स्वयं अपनी स्वतंत्रता खोजनी होती है। जन्म से हम स्वतंत्र नहीं हैं, जन्म से हम कई प्रकार की परतंत्रताएं लेकर ही पैदा होते हैं। बाहरी परतंत्रताएं तो हम सबको मालूम हैं, उसकी मैं चर्चा नहीं करूंगा। मैं आध्यात्मिक परतंत्रताओं की बात करना चाहता हूँ। हमारी आत्मा पर कुछ बेड़ियाँ पड़ी हैं, कुछ जंजीरें पड़ी हैं। उन जंजीरों को हम, और केवल हम ही तोड़ सकते हैं लेकिन दुर्भाग्य तो यह है कि उन जंजीरों को हम आभूषण समझते हैं और तब हम उनको तोड़ने की बजाय उनको और भी मजबूत करते रहते हैं। वे कौन सी सूक्ष्म जंजीरें हैं, उस सम्बंध में थोड़ा विमर्श आपसे करना चाहूँगा।

मनुष्य का अस्तित्व चार तलों पर है। सबसे बाहर हमारा स्थूल शरीर है। उसके भीतर सूक्ष्मतर मन है–विचारों, स्मृतियों और कल्पनाओं का जगत। फिर मन से भी अधिक सूक्ष्म व गहरा हमारा हृदय है–भावनाओं का जगत। फिर उन भावनाओं के केन्द्र में हमारी सूक्ष्मातिसूक्ष्म आत्मा है। इस प्रकार हमारे होने के चार तल हैं; शरीर, मन, हृदय और आत्मा। आत्मा है बिल्कुल केन्द्र में और शेष तीन उसके बाहर की परिधियाँ हैं। आत्मा तो जन्मजात स्वभावगत रूप से स्वतंत्र ही होती है किन्तु ये तीन परतें उसके ऊपर जंजीरों की पड़ जाती हैं। एक-एक जंजीर को हम धीरे-धीरे समझें तो हमें ख्याल में आना शुरु होगा कि किस प्रकार के बंधन में हम फंसे हुए हैं और हमारे धर्मग्रन्थों में मोक्ष की जो बात है, 'दि अल्टीमेट फ्रीडम', परम स्वतंत्रता की; वह क्या है? उसकी भी समझ में आ सकेगी। इन तीन प्रकार की जंजीरों से अगर हम मुक्त हो सकें तब हमारी आत्मा वास्तव में स्वतंत्र होती है।

2. शरीर की सात बेड़ियां

सर्वप्रथम शरीर की स्थूल जंजीरें हैं; आसानी से दिखाई पड़ती हैं। सात बिन्दुओं पर मैं बात करना चाहूँगा। हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रियों से तो सभी परिचित हैं; रूप, रस, गंध, श्रवण और स्पर्श की। एक छठवीं इन्द्रिय और है जिसकी विज्ञान ने खोज की है। वह है, सन्तुलन की इन्द्रिय, 'सैन्स ऑफ बैलेन्स

ऑरगन'। हमारे कान के भीतर छुपी हुई है वह, इसलिए बाहर से उसका पता नहीं चलता। वह प्रभावित होती है जब कोई आदमी शराब, भांग या अन्य मादक द्रव्य का नशा कर लेता है, तब उसका सन्तुलन खो जाता है, डांवाडोल चलने लगता है, गिर जाता है; ठीक से सम्भलते-चलते नहीं बनता। तो वह छठवीं इन्द्रिय है जो नशे से प्रभावित होती है। सातवीं हैं हमारी कर्मेन्द्रियाँ—हाथ-पैर, जिनसे हम अपना काम करते हैं। इन सातों प्रकार की इन्द्रियों की एक प्रकार की गुलामी में हम फंस जाते हैं। ये इन्द्रियां हमें इसलिए मिली थीं प्रकृति से कि हम इनका उपयोग करें लेकिन कुछ उलटा हो जाता है। ये इन्द्रियां हमारा उपयोग करने लगती हैं। इसे थोड़ा गौर से समझें।

यदि आत्मा मालिक हो और इन्द्रियों व शरीर का उपयोग करे, तब स्वतंत्रता घटती है। अगर शरीर मालिक हो जाए, इन्द्रियाँ आदेश देने लगें और आत्मा इनके पीछे घिसटने लगे तो आत्मा गुलाम हो जाती है। इन बेड़ियों को हम सब भली-भांति जानते हैं। कोई आदमी मोटापे की बीमारी से ग्रस्त है, हार्ट अटैक हो गया है, कोलेस्ट्रोल बढ़ गया है, डाइबिटीज हो गई है। डाक्टर उसे मना कर रहे हैं कि खाना कम खाओ, डाइटिंग करो वर्ना और बीमारी बढ़ती जाएगी। बुद्धिगत रूप से वह डाक्टर की बात समझ लेता है। लेकिन खाना खाने जब बैठता है, सब बुद्धिमानी वगैरह भूल जाता है। उसकी जीभ उसके ऊपर हावी हो जाती है; जीभ आज्ञा देती है कि 'खाना स्वादिष्ट है, और खाओ' उस बेचारे को खाना पड़ता है। लाख कोशिश के बावजूद उसका वजन

नहीं घटता, डाइबिटीज कन्ट्रोल नहीं होती, हृदय की बीमारी ठीक नहीं होती। वह जानता है कि मैं जो खा रहा हूँ वह मेरे लिए जहर है लेकिन उसकी बौद्धिक जानकारी किसी काम नहीं आती। जब भोजन की थाली सामने आती है, सब ज्ञान-व्यान रखा का रखा रह जाता है।

इस प्रकार हम इन सातों इन्द्रियों के गुलाम हो गए हैं। आँख हमें फोर्स करती है कि हमें क्या देखना है। वह सौन्दर्य से आकर्षित होती है और हमें भागना पड़ता है सौन्दर्य के पीछे; अजीब स्थिति है हमारी। नौकरों की आज्ञानुसार हम जीते हैं। जीभ हमें बताती है क्या खाओ, क्या नहीं खाओ? आँख बताती है क्या देखो, क्या मत देखो? कान हमें बताते हैं क्या सुनो, क्या मत सुनो? हमारे हाथ हमसे कहते हैं क्या छुओ, क्या नहीं छूना है? और वह सन्तुलन की इन्द्रिय हमें मजबूर करती है बेहोश होने के लिए, मादक द्रव्य लेने के लिए- साधारण इंसान को ही नहीं, डॉक्टर तक को!

आधुनिक जगत में आज बड़ी से बड़ी समस्याओं में से एक समस्या है- ड्रग एडिक्शन। अमीर देशों में तो लगभग अस्सी प्रतिशत बच्चे एडिक्टिड हो गए हैं; अब हमारे देश में भी फैलती जा रही है यह बीमारी... महानगरों से शुरु होकर अब नगरों में भी पहुँच गई है और धीरे-धीरे गाँव और कस्बों में भी पहुँचती जा रही है। संतुलन की इन्द्रिय, सैन्स ऑरगन ऑफ बैलेन्स हमें मजबूर कर रही है कि हम शराब पीएं, कि हम नशा करें या गांजा-भांग, एल०एस०डी० और मैस्कलीन लें। सारी बुद्धि धरी की धरी रह जाती है, उसकी जानकारी कुछ काम नहीं आती; एक-एक 'सेल' तड़फ उठती है। सिगरेट पीने वाले लोग जानते हैं, शराब पीने वाले लोग जानते हैं, कैसी तलब भीतर मचती है। जब सिगरेट की तलब उठती है तब उनको सिगरेट पीनी ही पड़ती है। इस गुलामी को जरा देखें; संतुलन की इन्द्रिय के हम गुलाम हो गए। वह हमें लाचार कर रही है कि सिगरेट पीयो।

मुल्ला नसरुद्दीन एक बड़ा अद्‌भुत आदमी हुआ। बहुत बीमार था, उसके मित्र पकड़कर उसको डॉक्टर के पास ले गए। डॉक्टर ने कहा कि तुमको शराब छोड़नी ही पड़ेगी; तुम्हारा लीवर बिल्कुल खराब हो चुका है। इस तरह से अगर शराब पीते रहे तो छः महीने से ज्यादा जीवित न रह सकोगे, हम कुछ इलाज नहीं कर सकते। तुम्हें शराब छोड़नी ही पड़ेगी और कोई उपाय नहीं है। नसरुद्दीन ने बड़े अनमने ढंग से, न चाहते हुए कहा ठीक है, छोड़ दूंगा, जरूर छोड़ दूंगा। मित्र बड़े खुश हुए, परिवार के लोग प्रसन्न हुए कि चलो

शराब से छुटकारा हुआ। डॉक्टर ने खूब डराया-धमकाया। नसरुद्दीन ने कहा, जरूर छोड़ दूंगा।

शाम को नसरुद्दीन फिर अपनी बोतल लिए बैठा था। परिवार के लोग बहुत नाराज हुए, उन्होंने मित्रों को फोन करके बुलाया कि देखो कि तुम लोग डॉक्टर के यहाँ ले गए थे इसे, क्या सिखाकर लाए? मित्रगण आए, उन्होंने कहा कि हद हो गई.. तुमने कहा था कसम खाता हूँ, छोड़ दूँगा। नसरुद्दीन ने कहा तुम मेरी बात समझे नहीं, मैं मन ही मन यह कह रहा था कि 'इस डॉक्टर से इलाज कराना' छोड़ दूँगा। 'छोड़ दूँगा' जोर से कहा। शेष दिल की बात दिल ही में रखी। अरे दुनिया में हजारों डॉक्टर हैं, कोई इसी दुष्ट का ठेका है कि इससे इलाज कराऊँ! बदतमीज कहता है कि शराब छोड़ दो। शराब क्यों छोड़ दूँ? इस नासमझ डॉक्टर से इलाज ही कराना छोड़ दूँगा।

शराब मजबूर कर रही है नसरुद्दीन को कि वह शराब पीए। उसकी संतुलन इन्द्रिय मांग रही है कि नशा चाहिए, मुझे डांवाडोल... बेहोश होना है और नसरुद्दीन को माननी पड़ेगी उसकी बात। बेचारे डॉक्टर की सलाह रखी रह जाएगी। डॉक्टरी ज्ञान की सलाह खुद डॉक्टर अपने लिए नहीं मानते। वे खुद धूम्रपान और नशे के आदी होते हैं। हम गौर से देखें तो पाएंगे कि अपने शरीर के गुलाम हो गए हैं। तो ये सात हमारी इन्द्रियां हैं, पांच तो सभी जानते हैं; छठवीं सन्तुलन की तथा सातवीं हैं-कर्मेंद्रियां; सभी हमें गुलाम बना रही हैं।

3. देह मालिक या सेवक?

एक बार गौतम बुद्ध प्रवचन दे रहे थे। एक व्यक्ति उनके सामने ही बैठा था और प्रवचन सुनते-सुनते अपना पैर का अँगूठा जोर से हिला रहा था। बुद्ध अचानक बीच में रुक गए और उससे पूछा कि तुम्हारे पैर का अँगूठा क्यों हिल रहा है? उसने कहा कि भगवन, आप भी कहाँ की छोटी सी बात पर ध्यान दे रहे हो; मुझे ख्याल भी नहीं था! जैसे ही वह बोला, उसका पैर रुक गया। वह कीने लगा, आप अपना प्रवचन जारी रखें, पैर के अंगूठे से क्या लेना-देना?

बुद्ध ने कहा—लेना-देना है... मैं जानना चाहता हूँ कि पैर का अंगूठा क्यों हिल रहा था? तुम्हारा अंगूठा है, तुम्हारा पैर है। उसने कहा कि मुझे ठीक-ठीक ख्याल नहीं है, वह अनजाने में हिल रहा था। बुद्ध ने कहा तब तो बड़े चौंकने और सोचने की बात है यह पैर तुम्हारा है कि किसी और का? अंगूठा तुम्हारी मर्जी से हिलता है कि अपनी मर्जी से... और जिस आदमी का अपने अंगूठे पर वश नहीं है उससे और क्या उम्मीद की जा सकती है! तुम होश में हो या मूर्च्छा में?

तुम्हारे पैर तुम्हें वेश्यालय ले जाएंगे, तुम्हारा कोई वश है कि नहीं है? जब अँगूठा हिलने पर तुम्हारा वश नहीं है, कल तुम क्रोध में किसी की हत्या कर दोगे और कहोगे मैं क्या करूं? हाथ ने उठाकर चाकू मार दिया या किसी की गर्दन दबा दी। इन हाथों पर तुम्हारा वश है या नहीं? तुम्हें अँगूठे हिलने का पता नहीं, तुम कैसे आदमी हो? तुम शरीर के गुलाम हो अथवा शरीर तुम्हारा गुलाम है।

जरा सोचें, आप कार की स्टेयरिंग मोड़ना चाहते थे लेफ्ट साइड में और स्टेयरिंग मना करे कि नहीं मुड़ेंगे और स्टेयरिंग अपने आप राइट साइड में मुड़ जाए और आप कुछ भी न कर पाएं। और कार का इंजन आपको मजबूर करे कि जहाँ कार को ले जाना है वह आपको ले जाएगी। क्या फिर भी आप उस कार के मालिक कहलाएंगे? आप तो कार के गुलाम हो गए। अगर आप अपनी मर्जी से कार को कहीं ले जाते हैं तब तो आप कार के मालिक हैं और कार आपको ऑर्डर देने लगे... हो सकता है भविष्य में हो जाए, कम्प्यूटराइज्ड कार आने लगें और वे बताएं कि यहाँ नहीं, वहाँ जाना है; हम अपनी स्वेच्छा से चलेंगे। आप ज्यादा गड़बड़ करें, आज्ञा देने की कोशिश करें तो एक लोहे का हाथ बाहर निकले और आपके गाल पर चांटा पड़े कि चुपकर बैठो, हम अपनी मर्जी से जहाँ ले जाना है वहाँ ले जाएंगे!

आपकी एक न चले... क्या आपको कार का मालिक कहा जा सकता है?

तो फिर जरा सोचें यह शरीर भी हमारा वाहन है; इसमें हम यात्रा कर रहे हैं जन्म से लेकर मृत्यु तक। सत्तर-अस्सी साल इस वाहन में हम सवार रहेंगे और यह वाहन हमें निर्देश दे रहा है कि हमें क्या करना चाहिए? हमें क्या खाना है? यह बताता है, हमें क्या पीना है? यह तय करता है। शरीर को आ रही है नींद, उबासियां आ रही हैं किंतु आँखें कह रही हैं टेलिविज़न सिरियल देखना है और आँखें देखे चली जा रही हैं। अजीब हालत है, नींद आ रही है, पूरा शरीर नींद की माँग कर रहा है और आँखें फोर्स कर रही है कि नहीं! खबरदार, अभी पूरी फिल्म खत्म करनी है। आँखें मजबूर कर रही हैं आपको कि चाहे जो हो.... अंत तक कहानी देखनी ही पड़ेगी।

ठीक ऐसे ही अन्य इन्द्रियां हैं। कभी एक ताकत में आ जाती है कभी कोई दूसरी ताकत में आ जाती है और अपनी मर्जी अनुसार जो उसको करवाना है, वह हमसे करवा लेती है। क्या हम परतंत्र नहीं हैं? हम एकदम शरीर के गुलाम हैं। ये सातों इन्द्रियां हमारी मालिक बन बैठी हैं। कई लोग अदालत में

कहते हैं कि हम को पता नहीं कि कैसे हमसे हत्या हो गई? हमें तो स्मरण भी नहीं पड़ता कि हमने हत्या की। पहले समझा जाता था कि ये लोग शायद झूठ बोल रहे हैं; बाद में मनोवैज्ञानिकों ने बहुत विश्लेषण करके बताया कि जरूरी नहीं है कि वह हत्यारा झूठ ही बोल रहा हो। उसको होश ही नहीं है, खबर ही नहीं है कि उसने हत्या की। कब उसका शरीर उठा, कब उसने पिस्तौल उठा ली, कब उसने गोली चला दी; उसको कुछ पता नहीं। हाँ! प्रमाण पूरे हैं कि उसी की पिस्तौल से गोली चली लेकिन जरूरी नहीं है कि वह झूठ बोल रहा हो। हो सकता है वह सच बोल रहा हो, उस बेचारे को वाकई पता न हो। आपका शरीर जो-जो कर रहा है, क्या आपको पता है?

बहुत सी चीजें आपके अनचाहे हो रही हैं। हम एक खतरे की स्थिति में हैं; बिल्कुल गुलाम की हालत में हैं। इस गुलामी के प्रति अगर हम जागरूक हो जाएं तो गुलामी टूट सकती है। इसलिए मैंने कहा कि दुर्भाग्य है कि हमें परतंत्रता के बारे में मालूम भी नहीं है कि हम वस्तुतः कितने परतंत्र हैं!

जब पहली बार सरकार ने निर्णय लिया कि हर कम्पनी को सिगरेट के पैकेट पर लिखना होगा कि 'स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद' तो बड़ा हड़कम्प मच गया; फिर सिगरेट कौन खरीदेगा? डिब्बी पर लाल अक्षरों में लिखा है जहर; फिर कौन खरीदेगा? सिगरेट कम्पनी वाले बड़े परेशान व बेचैन हुए। उन्होंने बहुत कोशिश की कि यह नियम न बन पाए किंतु वह नियम पारित हुआ। लेकिन उनका डर बेकार साबित हुआ। भय की कोई जरूरत नहीं थी। लोगों को कोई मतलब नहीं, तुम कुछ भी लिख दो। वे तो पीयेंगे, उनकी इन्द्रियाँ उनको मजबूर कर रही हैं।

इस देश के गौरवशाली अतीत में बुद्ध, महावीर, नागार्जुन, बोधिधर्म, कृष्ण, कपिल, कणाद, कबीर, नानक, दादूदयाल, रैदास जैसे अनूठे मुक्त-पुरुष हुए हैं। बीसवीं सदी ने रमण महर्षि, रामकृष्ण परमहंस, जे. कृष्णमूर्ति, जार्ज गुरजिएफ, मेहर बाबा और ओशो जैसी अद्‌भुत जाग्रत चेतनाओं को जाना है। हमारे लिए बंधनों में सोए रहना कितना लज्जास्पद है। ओशो सिद्धार्थ जी द्वारा लिखा यह गीत हमें झकझोरेगा। आओ मिलकर गाएं, और खुद को जगाएं-

मेरे भारत मेरे महान, जागो मेरे हिन्दुस्तान।
तू ही यदि सोया रहा मनुज का, कहो कैसे होगा विहान?
तू जाग अखिल विश्व जागे, हिंसा विद्वेष युद्ध भागे।
अथ शांति शरणं गच्छामि, भज संघं शरणं गच्छामि।

भारत केवल हिमगिरि और सागर से घिरा भूखण्ड नहीं।
यह बुद्धों का है संघ कि जिसका कहीं आदि या अन्त नहीं।
मोसेज़, मुहम्मद या जीसस, सब हैं भारत के ही वंशज।
अथ भारत शरणं गच्छामि, भज संघं शरणं गच्छामि।
है धन्य देश यह जहाँ अमर ऋषियों की वाणी गूंजी है।
शिव, कृष्ण, बुद्ध, ओशो, शंकर, भारत की असली पूंजी हैं।
इनके चरणों में नमन करो, कुछ ध्यान भजन स्मरण करो।
निर्वाणं शरणं गच्छामि, भज संघं शरणं गच्छामि।
तुम हंसो हंसेगें महावीर, तुम नाचो कि मीरा नाचे।
तुम गाओ कि गाएं नानक, कान्हा की बंसी फिर बाजे।
हों राम नाम के सभी रिंद, आओ ऐसा हम रचें हिंद।
अथ रामं शरणं गच्छामि, भज संघं शरणं गच्छामि।
है बड़ा भाग्य मानुष होना, भारत में पुनः जन्म लेना।
क्या पता कि मौका मिले न फिर, इसलिए न अवसर यह खोना।
देने को राम रतन प्यारे, योगी आया तेरे द्वारे।
अथ सद्गुरु शरणं गच्छामि, भज संघं शरणं गच्छामि।।

देने को राम रतन प्यारे, योगी आया तेरे द्वारे। सद्गुरु वह उपहार तभी दे सकता है जब हम शरीर से और गहरी ज्यादा परतंत्रताओं से मुक्त हों; अब जरा सूक्ष्म मन की गुलामियों को समझें।

4. मन की सूक्ष्म गुलामियां

पहली मानसिक परतंत्रता है, विश्वासों की परतंत्रता। अंधविश्वासों के कटघरे में हम खड़े हैं, जकड़े हुए चारों तरफ से। जन्म के साथ ही हम जकड़ लिए गए। कोई हिन्दू घर में पैदा हुआ था, वह हिन्दू विश्वास को मानता है, कोई मुसलमान घर में पैदा हुआ था, वह मुसलमान अंधविश्वास को मानता है, ईसाई परिवार में पैदा हुए व्यक्ति के दिमाग में ईसाई विश्वास मौजूद हैं। और वे लोग अंदर बंद हैं; उनसे बाहर नहीं निकल सकते क्योंकि उन्हें समझाया गया है कि यही तुम्हारा घर है, तुम्हें इस पर गर्व होना चाहिए। हमें दूसरे के अंधविश्वासों पर हँसी आती है। हमें अपने विश्वासों की जंजीरें दिखाई नहीं पड़तीं। जब एक ईसाई कहता है कि ईसा मसीह का जन्म एक कुआंरी माँ से हुआ था तो शेष सारी दुनिया इस बात पर हँसती है। क्या बेहूदी बात है? कुआंरी माँ से कैसे बच्चा पैदा होगा? सारी दुनिया मखौल उड़ाती है; ईसाई भर को समझ नहीं आता। उसका दिमाग बिल्कुल जकड़ा हुआ है, वह इस विश्वास की कैद में बंद है। ठीक वही बात शेष सब पर लागू होती है।

किसी हिन्दू से कोई पछे कि गणेश जी की कहानी पर तुम्हें भरोसा है कि पार्वती ने स्नान करते हुए, शरीर से निकाले मैल का एक पुतला बना दिया, वह उनका पुत्र बन गया और शंकर जी ने आकर गर्दन काट दी उसकी। तब पार्वती ने कहा कि अरे! यह तो तुम्हारा बेटा है। तब हाथी के बच्चे की गर्दन काटकर वे लाए और गणेश के सिर पर लगा दी; इससे ज्यादा हास्यास्पद कोई कहानी हो सकती है। पर हिन्दू से कहोगे तो हिन्दू नाराज हो जाएगा। उसने बचपन से यही सुना है। बारंबार दोहराया गया, पुराना झूठ भी सच जैसा भासने लगता है। सारी दुनिया इस बात पर हँसेगी, मखौल उड़ाएगी कि कैसे बचकानेपन की बात है!

वह दुनिया की पहली अद्‌भुत प्लास्टिक सर्जरी थी। हाथी की गर्दन माटी के पुतले पर लगा दी गई! और सारे देवी-देवताओं की पौराणिक कहानियां ऐसी ही हैं—एक से बढ़कर एक विचित्र! किसी के तीन मुंह थे—त्रिमूर्ति, किसी के दस सिर थे—दशानन, किसी के चार हाथ थे—चतुर्भुज, किसी के हजार हाथ थे—सहस्त्रबाहु। जरा सोचो तो हजार हाथों में हिलने-डुलने की जगह कहाँ बचेगी? कन्धे दो हैं, हाथ हजार हैं! बेचारा दर्जी इनके कपड़े कैसे सिलजा होगा! दस सिरों का वजन पतली सी गर्दन उठा पाएगी? एक से एक अनूठी और ऊट-पटांग काल्पनिक बातें... लेकिन बचपन से उनको सुनते-सुनते

हमारा मन उनसे जकड़ गया है और हम संस्कारित होकर इस बुरी तरह मानसिक रूप से परतंत्र हो गए हैं कि विपरीत बात सुनने तक को राजी नहीं, लड़ने-मरने को तैयार हो जाएंगे। अंधविश्वासों के कटघरे में हम कैद हैं। इस कारागृह की दीवारों को हम संभालते, सजाते; खुद खिड़कियां-दरवाजे बंद रखते कि संदेह की हवा का झोंका कहीं से प्रवेश न कर जाए। हमें उस हवा की तलाश करनी चाहिए जो इन मूढ़तापूर्ण धारणाओं को जड़ों से उखाड़ दे।

जो फिज़ां का रंग बदल सके, हमें उस हवा की तलाश है;
जो लहू में बिजलियां भर सके, हमें उस दवा की तलाश है।
न शज़र पे बच रही पत्तियां, वहाँ उल्लुओं की हैं बस्तियां;
जो जड़ों से इनको उखाड़ दे, हमें उस हवा की तलाश है।

रूस में एक अद्‌भुत फकीर हुआ पिछली सदी में, जार्ज गुरजिएफ उसका नाम था। बचपन में उसके माता-पिता मर गए तो वहाँ जो घुमक्कड़ कबीले होते हैं, खानाबदोश; उनके साथ गुरजिएफ का बचपन बीता। एक बड़ी विचित्र चीज उसने देखी। वे जो खानाबदोश लोग थे, एक गाँव से दूसरे गाँव जाते; टैन्ट लगाकर वे रहते। सभी पुरुष और महिलाएं तो गाँव में काम करने चले जाते, मजदूरी करते, शाम को वापिस लौटते। उन गरीबों की एक कठिनाई थी, बच्चों के साथ क्या किया जाए? अत्यंत दरिद्र कबीले थे, महिलाओं को भी काम पर जाना पड़ता था; बच्चों की देख-रेख कैसे करें? उन्होंने एक उपाय खोज लिया था। जब मां अपने बच्चों को छोड़कर जाती तो वह एक चाक का घेरा बना देती बच्चों के चारों तरफ, पाँच-सात फुट का वर्तुल, और कह देती कि तुम इस घेरे के बाहर नहीं निकल सकते।

गुरजिएफ ने जब यह पहली बार देखा तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह घेरा कैसे काम करेगा... बच्चे को कौन रोकेगा निकलने के लिए? कहीं चला जाए? दूर निकल जाए, खो जाए! लेकिन आश्चर्य कि कोई बच्चा उस घेरे के बाहर नहीं निकल पाता था। बच्चों की तो बात छोड़ो, वह बच्चा बड़ा हो जाता, जवान हो जाता, उसकी माँ या उसकी पत्नी उसके चारों तरफ एक घेरा बना देती, और कहती कि तुम इसके बाहर नहीं निकल सकते; तो बड़ी मुश्किल हो जाती, फिर वह प्रौढ़ व्यक्ति भी नहीं निकल सकता था, कोई अदृश्य दीवार उसे रोकती थी। वह निकलने की कोशिश करता, भागने का

प्रयत्न करता लेकिन जैसे ही उस लकीर पर आता, किसी काँच की दीवार से जैसे वह टकरा गया हो, बेचारा धड़ाम से नीचे गिरता। रोता, चीखता, चिल्लाता कि इस रेखा को मिटा दो तभी मैं बाहर निकल पाऊँगा। लेकिन हम सब भी इसी प्रकार के विश्वासों के घेरों में बन्द हैं; हमारे अंधविश्वास हमको दिखाई नहीं पड़ते। अपने विश्वासों के प्रति जागें। कैसे-कैसे विचित्र अंधविश्वासों में हम घिरे हैं? थोड़ा सा उस पर ख्याल करेंगे तो आपको खुद हँसी आएगी और उसके साथ ही मानसिक स्वतंत्रता की शुरुआत होगी; खतरों से खेलने का साहस जन्मेगा। भंवर में उतरने की, अज्ञात में जाने की, माता-पिता रूपी ईश्वर के कल्पित सहारों को छोड़ने की हिम्मत जुटेगी। स्वतंत्रता के संग उत्तरदायित्व अपने कंधों पर लेना होगा। सुनो, शायर क्या कहता है-

मेरी आंख जिसको थी ढूंढती, कभी साहिलों पर मिला नहीं;
जो भंवर में फिर से उतार दे, उस नाखुदा की तलाश है।
अभी आसमां का ज़िकर न कर, अभी आसमां की फिकर न कर;
जो ज़मीं की जुल्फें संवार दे, उस बासफा की तलाश है।
हो ज़मीं से जो भी परे-परे, उसे आसमां पर ही छोड़ दे;
जो ज़मीं पर हो, जो ज़मीं का हो, हमें उस खुदा की तलाश है।

बहुत हो चुकीं ईश्वर की हवाई बातें, अब जरा ठोस पृथ्वी पर उतरो। कुछ संदेहशील साहसी लोग विश्वास तोड़ने का प्रयास करते हैं लेकिन तुरंत उन विश्वासों के विपरीत विश्वासों के घेरे में चले जाते हैं। आस्तिक का विश्वास है कि परमात्मा है; जानता तो वह नहीं, देखा तो उसने नहीं, लेकिन मानता है। यह मान्यता एक मानसिक कारागृह है।

फिर कुछ लोग हैं जो नास्तिक हो जाते हैं, वे कहते हैं कहीं कोई भगवान इत्यादि नहीं, ईश्वर नहीं है। वे सोचते हैं कि उन्होंने अंधविश्वास तोड़ दिया; लेकिन उन नासमझों ने भी अंधाविश्वास तोड़ा नहीं केवल 'रिप्लेस' कर लिया। एक जंजीर हटाकर दूसरी जंजीर पहन ली। उन्होंने एक विपरीत विश्वास पकड़ लिया कि कोई ईश्वर नहीं है। उन्होंने भी इस बात को जाना नहीं; खोजा तो नहीं है। इनको कैसे पता चल गया कि ईश्वर नहीं है। क्या सारे विश्व में उन्होंने खोज लिया? नहीं! उनकी भी एक अंधविश्वासपूर्ण मान्यता है; आस्तिक भी अंधविश्वासी है, और नास्तिक भी अंधविश्वासी है। थोड़ा ख्याल करें किस-किस प्रकार की धारणाओं में हम जकड़े हुए हैं।

5. वैचारिक परतंत्रता

दूसरी मानसिक परतंत्रता विचारों की गुलामी है। कुछ विचार हमारी खोपड़ी में चल रहे हैं और हम उन विचारों की कैद में बंद हैं। विचार-प्रवाह के बाहर निकलना मुश्किल है। कोई आपके विचार के विपरीत कुछ करे या कहे तो आप लड़ने-मरने के लिए तैयार हो जाएंगे; तलवारें-बंदूकें निकल आएंगी। दुनिया में इतने लड़ाई-झगड़े होते हैं, कलह होती हैं, क्यों? मतभेद की वजह से। छोटी-मोटी कलह घर-परिवार में, भाई-भाई के बीच, पति-पत्नी के बीच, बाप-बेटे के बीच, पड़ोसी के साथ, ऑफिस में अपने संगी-साथियों के संग और फिर बड़े तल पर समाजों व देशों के बीच, अंतर्राष्ट्रीय युद्ध आखिर किसलिए होते हैं? विचार-भेद के कारण। हम अपने-अपने विचार के कटघरे में बंद हैं; दूसरे का विचार हमें बिल्कुल समझ ही नहीं आता।

कई पति-पत्नी मेरे पास आते हैं, उनकी एक ही शिकायत है कि हम एक-दूसरे को समझ नहीं पाते। कौन किसको समझ पाता है? पिता पुत्र को नहीं समझ पाता, पुत्र पिता को नहीं समझ पाता; दोनों के अपने-अपने विचार हैं। और इन विचारों में कहीं कोई तालमेल नहीं बैठता और दूसरे का विचार समझने की जैसे हमारी कोई क्षमता ही नहीं बची। हम अपने कटघरे में बंद हैं, वह अपने कटघरे में बंद है; और इसलिए इतनी मिसअंडरस्टेंडिंग, गलतफहमियां, इतनी कलह और लड़ाई-झगड़े होते हैं, दुनिया में। विचार-संघर्ष के कारण कितना खून-खराबा होता है!

एक साम्यवादी और एक प्रजातांत्रिक में झगड़ा क्या है? विचारों का झगड़ा है। कम्युनिस्ट कुछ सोचता है, डेमोक्रेटिक कुछ और सोचता है। चाहे राजनीति के तल पर हों, चाहे धर्म के तल पर, सोच के कारण सारे उपद्रव हैं। हिन्दू और मुसलमान के बीच कौन सी दीवार है? विचारों की दीवार है। हिन्दू कह रहा है कि मूर्ति में भगवान है और मुसलमान कह रहा है कि भगवान तो निराकार होता है, वह तो सर्वव्यापी है, एक छोटे से पत्थर के पिंड में कैसे समा सकता है? उसके अपने विचार और तर्क हैं। जो साकार मूर्ति में भगवान को देख रहा है, उसके अपने मजबूत तर्क व विचार हैं। वह कह रहा है कण-कण में भगवान है, इस मूर्ति में भी सर्वव्यापक भगवान है। दोनों की अपनी दलीलें हैं, और दोनों ही दूसरे के विचार को समझने के लिए जरा भी तत्पर नहीं। हम कितने परतंत्र और गुलाम हैं अपने विचारों के। हम अपनी जान गंवाने के लिए तैयार हैं लेकिन इस विचार की कैद से बाहर नहीं

निकलेंगे और ये विचार हैं क्या? गुरजिएफ ने जिस चाक की लकीर का वर्णन किया है, क्या उससे ज्यादा ठोस हैं ये? चाक लाइन तो फिर भी दिखाई देती थी, कम से कम उसमें कुछ चाक के कण तो थे; ये अदृश्य विचार लकीरें तो दिखाई भी नहीं देतीं, चाक से भी ज्यादा असत्य हैं।

ओशो ने करीब 15 साल ट्रेन में खूब यात्राएं कीं। अक्सर कोई दूसरा व्यक्ति बैठा होता कोच में; वह पूछता, आप कौन हैं? नाम, पता, किस जाति के हैं? कई बार बड़ा मजा आता। ओशो कह देते–मुसलमान हूँ। दाढ़ी-मूँछ देखकर लगता भी कि मुसलमान होंगे। फिर वह व्यक्ति एकदम सिकुड़ कर बैठ जाता। दीवार खड़ी हो गई... मुसलमान हैं, तो बस उसने बातचीत बन्द कर दी, अपनी मैगज़ीन निकाल कर पढ़ने लगा। फिर थोड़ी देर बाद ओशो बोलते कि सुनिए, मैं मजाक कर रहा था, अरे मैं तो हिन्दू हूँ, आप मुझको देखकर नहीं समझे? वह कहता–हाँ, लग तो रहा था महात्माजी। अब वह थोड़ा रिलैक्स होकर चरण स्पर्श कर लेता, फिर बातचीत करने लगता, कहाँ के रहने वाले हैं, आपके आश्रम का नाम क्या है? चाय-नाश्ता निकालता अपने टिफिन से, कहता–लीजिए, लीजिए। जब मुसलमान थे तब कोई बात नहीं उठाई थी चाय-नाश्ते की। मुसलमान के साथ भला कैसे साथ खा-पी सकते हैं! हिन्दू हैं तो फिर ठीक... शिथिल हुए।

जब चाय-नाश्ता उन्होंने करा दिया तो ओशो ने कहा, देखिए! अब सच्ची बात बता दूँ, हूँ तो मैं मुसलमान! अब तो संग-साथ भोजन लेकर आप भी भ्रष्ट हो गए। लोग नाराज हो जाते कि हद कर दी, महात्मा होकर आप मजाक कर रहे हैं? सच-सच बताइए। आप हिन्दू हैं या मुसलमान, जैन हैं, सिक्ख हैं? ओशो कहते- बस एक इंसान होना काफी नहीं क्या!

अपनी-अपनी कल्पित दीवारें हैं। और ये दीवारें किस चीज से निर्मित हैं? सिवाय विचारों के और कौन सी ईंटों से बनी हैं? हिन्दू का एक खास विचार है, मुस्लिम का भिन्न, सिक्खों का और एक पृथक विचार है।

उन्नीस सौ चौरासी में सिक्खों के साथ जो हुआ इस देश में, जरा याद करें। कैसा खूंखार जानवरों जैसा व्यवहार सारे देश ने किया था! क्या भेद है हिन्दू और सिक्खों में? विचारों का भेद है। वे कुछ और मानते हैं, हम कुछ और मानते हैं। और सब मानी हुई बातें हैं। वह चाक लकीर तो फिर भी कोई लकीर थी; विचारों की लकीर उतनी भी यथार्थ नहीं। कहीं दिखाई देती है? किसी लैबोरेट्री में ब्लड टैस्ट कराके बता सकते हैं कि यह हिन्दू का खून है

कि मुसलमान या ईसाई का। कहीं एक्सरे से पता चल सकता है कि ये हड्डियाँ यहूदी, जैन या बौद्ध हैं? दिमाग की सी.टी. स्कैन से मालूम चलेगा कि पारसी है या सिक्ख? नहीं, सारे मनुष्य एक से हैं। कहीं कोई वास्तविक भेद नहीं है। मगर विचारों का उपद्रव! हम बन्द हैं अपने-अपने काल्पनिक कटघरों में।

6. विज्ञापन की कैद

तीसरी मानसिक कैद है विज्ञापन की। आपको सुन कर हँसी आएगी... लेकिन जरा गौर करना... किस प्रकार से विज्ञापन, एडवरटाईज़मैन्ट्स हमें घेर लेते हैं। आपने न्यूज पेपर या मैगज़ीन खोली, उसमें लिखा है लक्स टॉयलट सोप; रेडियो में फिल्म अभिनेत्री कह रही है: मेरे सौन्दर्य का राज लक्स साबुन। बाज़ार में निकले, बोर्ड पढ़ा आपने, वहाँ भी फिल्मी देवी बैठी है; वह घोषणा कर रही है, मेरी खूबसूरती का राज है: लक्स साबुन। कितनी हास्यास्पद बात है; इसका सौन्दर्य जन्मजात होगा, लक्स साबुन से किसी का नाक-नक्शा कैसे बदल सकता है? लेकिन हमारी बुद्धि धीरे-धीरे काम करना बन्द कर देगी; जब बार-बार, बार-बार हर जगह एक ही झूठ दोहराया जाएगा—अखबार में, टी०वी० में, पत्र-पत्रिकाओं में, बोर्ड्स और बैनर्स पर जहाँ देखो वही बात प्रचारित की जा रही है—लक्स टॉयलट सोप, लक्स टॉयलट सोप! दिन-रात प्रचार दिमाग के अचेतन हिस्से में घुसता जा रहा है।

फिर एक दिन आप जाते हैं दुकान पर, दुकानदार पूछता है कौन सा साबुन? आप कहते हैं—लक्स दीजिए। यह आप नहीं बोल रहे हैं, आपकी खोपड़ी में विज्ञापनदाताओं ने जो भर दिया है, वह बोल रहा है। आप सोचते हैं कि आपने बड़े विचार-विमर्श करके, चुनकर साबुन खरीदी है। यह आपने नहीं खरीदी है; आपसे खरीदवा ली गई है। आप बिल्कुल परतंत्र हैं। विज्ञापन का मनोविज्ञान जानने वाले जो करवाना चाहें, वे आपसे करवा रहे हैं।

अपने आपको विचारशील कहने वाले हम बुद्धिजीवी मनुष्य वास्तव में विचारों से, विवेक से, ज्ञान से, सोच-समझ कर नहीं जीते। हम बहुत ही अन्धे तरीके से जी रहे हैं। अपनी मानसिक गुलामियों को थोड़ा समझें, किस प्रकार से हमें विज्ञापन की पुनरावृत्ति, रिपीटीशन प्रभावित करती है।

मैंने सुना है एक अति कुशल विज्ञापन एजेंट के बारे में। अमरीका में एक बहुत बड़े अरबपति के पास वह गया, जो अपने किसी भी प्रोडक्ट की एडवरटाईज़मैन्ट नहीं देता था; यह ऐजेंट पहली बार उससे मिलने गया। सुबह का समय था। वह अरबपति अपने बगीचे में टहल रहा था। इसने जाकर नमस्कार किया और कहा कि हम फलां-फलां एडवरटाईज़मैन्ट कम्पनी से आए हैं आपसे एक निवेदन करने के लिए। आपके इतने सारे कारखाने हैं, इतने आपके प्रोडक्ट्स हैं, आप कभी एडवरटाईज़ नहीं देते; एडवरटाईज़ दीजिए, उससे बड़ा लाभ होगा। उसको बड़ी देर तक समझाया। वह अरबपति हँसने लगा और बोला कि मेरे सारे प्रोडक्ट्स यूं ही बिक रहे हैं, मैं क्यों एड़वरटाईज़ करूं? मेरे माल की हमेशा कमी रहती है गोदामों में। जितना मैं बनाता हूँ सदा उससे ज्यादा माल की डिमांड है बाजार में। विज्ञापन पर खर्च करने से मुझे लाभ नहीं, बल्कि हानि होगी।

तभी सुबह-सुबह चर्च की घंटियां बजीं। उस एजेंट ने कहा अरबपति से कि सुनते हैं... यह घंटियों की आवाज चर्च से आ रही। उसने कहा- हाँ सुनता हूँ, इससे क्या लेना-देना? एजेंट ने पूछा कि जानते हैं यह चर्च कितना पुराना है? दो हजार साल पुरानी दुकान है ईसाईयत की। अभी तक रोज सुबह घंटी बजाकर चर्च वाले बताते हैं कि यहाँ चर्च है। अगर दो-चार महीने घंटी न बजे तो गाँव के लोग भूल जाएंगे कि चर्च भी है! दो हजार साल से एस्टेब्लिस्ड है यह दुकान... लेकिन आज भी घंटी बजानी पड़ती है।

वह एजेंट बोला—माना कि आज आपकी फैक्ट्री चल रही है, आपका नाम बाजार में बिक रहा है लेकिन इस भरोसे मत रहना कि सदा बिकता रहेगा। जो लोग विज्ञापन दे रहे हैं वे धीरे-धीरे जनता के दिमागों में घुस जायेंगे। आपकी चीज आउट ऑफ डेट हो जायेगी, क्रमशः लोग भूल-भाल जाएंगे। रोज-रोज मस्तिष्क में कोई बात घुसती रहे, घुसती रहे... तो अचेतन मन में जड़ें जमा लेती है। कहते हैं उस एजेंट को उस अरबपति से पहली बार विज्ञापन मिला; वह एकदम राजी हो गया कि यह बात ठीक है।

हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है; कितना ही बड़ा झूठ हो... फिक्र न करो, दोहराते रहो, कीप ऑन रिपिटिंग इट। दोहराते रहो, दोहराते रहो, धीरे-धीरे लोग मान जाते हैं और हिटलर ने ऐसा करके दिखा दिया। जर्मनी

जैसे बुद्धिमान मुल्क को उसने बड़ी बेहूदी बातें समझा दीं, जिस पर कोई भी हँसेगा। जब पहली बार सुनेगा तो कोई भी हँसेगा कि यह भी कोई बात है! मजाक है, कोई चुटकुला है क्या?

हिटलर ने कहा कि दुनिया में जो भी कठिनाइयां और बुराइयां हैं, उनका कारण यहूदी हैं- यह बड़ी विचित्र बात थी, कभी किसी ने ऐसा सुना नहीं था। हिटलर ने कहा कि यहूदियों के कारण दुनिया पतित हो रही है। यदि यहूदियों को नष्ट कर दिया जाए, मुसीबतों की जड़, इस भ्रष्ट जाति को ही खत्म कर दिया जाए तब जाकर नार्डिक रेस, शुद्ध आर्य जाति का राज्य सारी दुनिया में होगा और धरती पर स्वर्ग बस सकेगा। जब तक यहूदी जाति जिंदा है तब तक पृथ्वी पर नारकीय स्थिति ही रहेगी। शुरुआत में सब लोग हँसे इस बात पर; यह भी कोई तर्कसंगत बात है! बेचारे यहूदियों का क्या लेना-देना दुनिया के स्वर्ग या नरक बनने से? लेकिन हिटलर अपनी बात कहता गया, कहता ही गया, कहता चला गया। दस साल के भीतर पूरा जर्मन देश उससे राजी हो गया, वह चुनाव जीतने लगा। हिटलर के हाथ में सत्ता आ गई और आप जानते ही हैं उसने क्या किया? सैकिंड वर्ल्ड वार उसकी वजह से हुआ और करीब साठ लाख यहूदियों की गैस चैम्बर में डाल कर उसने हत्या की। मारने का एक आधुनिक नया तरीका उसने निकाला; सामूहिक रूप से सैकड़ों लोगों को थोक के भाव समाप्त करने का। क्या एक-एक को मारना, बाबा आदम के जमाने की तरकीबों से! लाखों यहूदियों की हत्या हेतु जर्मनी जैसा बुद्धिमान देश राजी हो गया।

विज्ञापन करते रहो, एक ही बात दोहराते रहो, बलपूर्वक दोहराते रहो; बेचारे आदमी का कमजोर मन कब तक प्रतिरोध करेगा? धीरे-धीरे लोग उसे स्वीकार लेते हैं। आप अपने मन में देखना बहुत सी बातें जिनको आप मानते हैं वे सिर्फ लम्बा विज्ञापन हैं और कुछ नहीं हैं। दीर्घकालीन विज्ञापन के परिणाम हैं। हजारों साल से उन्हीं-उन्हीं बातों को कहा जा रहा है। पीढ़ी दर पीढ़ी आपसे कहा गया है कि स्वर्ग और नर्क हैं; ईश्वर है, परमात्मा ने दुनिया बनाई। धीरे-धीरे सुनते-सुनते आप इन बातों को मानने लगे।

बचपन से आप इन बातों को सुनते आ रहे हैं, ये बातें उन लोगों ने आपके कान में डालीं जिन परिवारजनों और शिक्षकों पर आप भरोसा करते थे, जिन माता-पिता पर आप निर्भर थे। उन पर संदेह का कोई कारण भी नहीं था। बचपन में आपके अंदर गहन श्रद्धा का भाव था, आप आसानी से सब कुछ मान बैठे। धीरे-धीरे एक मानसिक गुलामी में आप पड़े।

आपको डराया-धमकाया जा सकता है। यदि ऐसा-ऐसा करोगे, धर्मगुरु की

बात नहीं मानोगे, शास्त्र आज्ञा के खिलाफ चलोगे तो पाप लगेगा; नर्क में जाओगे। आपके हाथ-पैर कंप जायेंगे कि ठीक है, अगर नर्क जाना पड़ेगा तो पाप न करेंगे। नर्क में बड़ी यातना मिलेगी। उससे तो अच्छा यह छोटा सा सुख त्याग देते हैं। कौन रिस्क ले? क्या पता पंडित ठीक ही हो!

धर्मगुरु समझा रहा है दान दो। और दान किसको दोगे? उसी को देना पड़ेगा। ब्राह्मण जब कहता है दान दो तो उसका तात्पर्य है, ब्राह्मण को दान दो। जैन मुनि जब कहता है दान दो तो उसकी संस्था को दान दो। सिक्ख गुरु जब कहता है दान दो तो गुरुद्वारे को दान दो; केवल तभी तुम्हें पुण्य मिलेगा और स्वर्ग की प्राप्ति होगी। पहले उन्होंने स्वर्ग-नर्क बिठाया आपके मन में, अब भय और लोभ के द्वारा आपकों संचालित किया जा सकता है। अब रिमोट कन्ट्रोल उस व्यक्ति के हाथ में है। अब वह कहता है मेरी बात मानोगे, जो शास्त्र में लिखा है वह करोगे तो स्वर्ग जाओगे। और शास्त्र उसी के पूर्वजों ने लिखा है। अगर तुम इसके विपरीत चले तो नर्क जाना पड़ेगा।

डर के कारण आदमी गुलाम होने को राजी हो जाता है। पहले हमने एक झूठी मान्यता मान ली, उसका लम्बा प्रचार किया। हजारों-हजारों साल से कहा जा रहा था; आदरणीय लोगों द्वारा कहा जा रहा था, हम उस चक्कर में फँस गए, मानसिक रूप से गुलाम बन गये। इस प्रकार से हम अनेक आयामों में लंबे ऐतिहासिक विज्ञापनों के गुलाम हैं। इन विज्ञापनों से जन्मे विचारों और विश्वासों के गुलाम हैं। जंजीरें बाहर नहीं, भीतर हैं। खुद हम ही उनकी सुरक्षा करते हैं। कोई इन्हें तोड़ने की चेष्टा करे तो वह शत्रु जैसा प्रतीत होता है।

7. क्या हम कुएँ के मेंढक हैं?

मन के तल पर और सूक्ष्म गुलामियां है, उनकी तरफ थोड़ा इशारा करुंगा। जिसे हम ज्ञान कहते हैं, जो हमने जाना, वह भी हमारे चारों तरफ एक कटघरा बना लेता है। जो भी हमने अनुभव किया, उसके पार जाना मुश्किल हो जाता है।

एक छोटी सी कहानी कहूँ। एक सागर का मेंढक एक दिन उछलते-उछलते किसी गाँव के कुएँ में जा पहुँचा। कुएँ के मेंढक ने उससे पूछा कि भाई कहाँ से आए? कुछ नए से लगते हो? उसने कहा मैं सागर से आया हूँ। कुएँ के मेंढक ने कहा—यह सागर क्या होता है? हमने कभी सुना नहीं। हमारे पूर्वज पीढ़ी दर पीढ़ी इसी कुएँ में रहे हैं। उस मेंढक ने कहा कि सागर बहुत विराट होता है, तुम अनुमान भी नहीं लगा सकते। तुम तो कुएँ में पैदा हुए, कुएँ में जी रहे, कुएँ में ही मर जाओगे; तुम्हें कैसे समझाऊं सागर के बारे में।

उस कुएँ के मेंढक ने करीब दो फुट की छलाँग मारी और पूछा–क्या तुम्हारा सागर इतना बड़ा है? सागर का मेंढ़क हँसने लगा। उसने कहा–इस छलाँग से सागर को नहीं नापा जा सकता। कुएँ के मेंढक को ताव आया, उसने चार फुट की छलाँग मारी और पूछा–क्या सागर इतना बड़ा है? सागर के मेंढक ने कहा कि क्षमा करो भाई; तुम्हारी छलाँग से सागर को मापने का कोई उपाय नहीं है। तब तो कुएँ के मेंढक ने पूरी ताकत लगाकर कुएँ की एक दीवार से दूसरी दीवार तक छलाँग लगाई और पूछा–क्या इतना बड़ा?

सागर के मेंढक ने कहा कि कुएं के इस परकोटे से सागर को नहीं नापा जा सकता। तब कुएँ के सारे मेंढक हँसने लगे; उन्होंने कहा कि तुम हमको बुद्धू बनाते हो। इससे बड़ी कोई जगह होती ही नहीं। हमारे पूर्वजों ने हमको बताया कि यही सबसे बड़ी जगह है, बस। हमारे धर्मग्रन्थों में लिखा है, इससे बड़ा कोई स्थान होता ही नहीं। निश्चित रूप से कुएँ के मेंढक के लिए कुएँ से बड़ा कुछ भी नहीं। कुआँ उसका ज्ञान है, कुआँ उसकी जानकारी में है। जिस चीज को हम जानते हैं, उस चीज से हम बँध जाते हैं; एक बंधन निर्मित हो जाता है। हम 'कूप-मंडूक' हो जाते हैं।

संयोगवश एक युवक मेडिकल साइंस पढ़कर डॉक्टर बन गया। उस बेचारे को पता भी नहीं कि वह एलोपैथी ज्ञान के घेरे में बंद खड़ा है। जब उससे कोई पूछता है, क्या मैं आयुर्वेदिक इलाज करवा लूं? तो वह हँसता है... वही कुएँ के मेंढक वाली हँसी! वह मान ही नहीं सकता कि एलोपैथी के अतिरिक्त भी कोई चिकित्सा पद्धति है। कोई कहता है कि मैं एक्यूपंक्चर से या नैचुरोपैथी से ठीक हो गया; वह डॉक्टर कहता है संयोग से ठीक हो गये होंगे; क्योंकि सच्ची चिकित्सा पद्धति तो बस एक ही है- एलोपैथी। क्या वह कुएँ के मेंढक से भिन्न व्यवहार कर रहा है? उसका ज्ञान, उसकी दीवार बन गया है। किसी आयुर्वेदिक चिकित्सक से पूछो, वह कहेगा भूलकर भी एलोपैथिक दवाई नहीं खाना; जहर है, शुद्ध जहर! असली दवाइयां तो बस आयुर्वेद में वर्णित हैं। ऐसा नहीं कि वह आपको समझाने के लिए कह रहा है, वह अपने सांयोगिक ज्ञान के घेरे में बुरी तरह से बंद है। सांयोगिक इसलिए कह रहा हूँ कि यह संयोग मात्र था कि उसने एक खास तरह की शिक्षा प्राप्त की। उसने जो सीखा-पढ़ा, बस उस कटघरे में कैद हो गया। इसके बाहर उसे कुछ नहीं सूझ सकता जैसे कुएँ के मेंढक को कुएँ के बाहर नहीं दिखाई पड़ता। हम अपने-अपने ज्ञान के घेरे में खड़े हैं। जिन्हें हम

वैज्ञानिक कहते हैं वे लोग भी अपनी जानकारियों के कारागृह में बन्द हैं। और मुश्किल यह है कि वे समझदार लोग कारागृह को ही अपना गृह समझते हैं।

मैंने फिज़िक्स का एक सिद्धान्त खोजा; न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के खिलाफ। न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त कहता है कि कोई भी दो पार्टीकल्स एक-दूसरे को आकर्षित, अट्रैक्ट करते हैं। मैंने इसके ठीक विपरीत एक सिद्धान्त खोजा; विकर्षण का सिद्धान्त और न्यूटन ने जितनी चीजें एक्सप्लेन की हैं, वे सारी एक्सप्लेन कीं, साथ ही एडीशनल उन प्रक्रियाओं को भी एक्सप्लेन किया जिनको न्यूटन एक्सप्लेन नहीं कर पाता। आपको अगर मालूम हो आधुनिक फिज़िक्स का, तो पता होगा कि आज एक बड़ी से बड़ी समस्या है, कि जो चार बेसिक फोर्सिस खोजे गए हैं, उन चार बुनियादी बलों में आपस में कोई सामंजस्य नहीं बैठ रहा। वैज्ञानिक जी०यू०टी०, ग्रेन्ड यूनीफिकेशन थ्योरी की खोज में संलग्न हैं, एक ऐसे युनाइटिड फोर्स को खोज रहे हैं जो इन चारों प्रकार की शक्तियों की इकट्ठी संयुक्त व्याख्या कर सके। अभी तक वह पकड़ में नहीं आ रहा। उसमें जो मौलिक भूल है, वह गुरुत्वाकर्षण की थ्योरी ही है। इसके चलते कभी जी०यू०टी० का सिद्धान्त नहीं खोजा जा सकेगा।

मैंने नया विकर्षण का सिद्धान्त खोजा, अपने नये सिद्धान्त को कई अखबारों में, मैगज़ीन्स में, कई विज्ञान-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने भेजा। प्रसिद्ध साइंस मैगजीन्स में आर्टिकल छपने भेजे। युनीवर्सिटी के प्रोफेसर्स, हैड ऑफ दी डिपार्टमेन्ट ऑफ फिजिक्स, उनको जाकर मैंने समझाने की कोशिश की। आपको जानकर हैरानी होगी जैसे ही मैंने इन्ट्रोडक्शन दिया कि मैं क्या बताने जा रहा हूँ—न्यूटन के विपरीत—फौरन मैंने देखा कि उन्होंने अपने कुएँ की दीवारों को जोर से पकड़ लिया।

उन्होंने कहा यह हो ही नहीं सकता। वे न्यूटन के खिलाफ सुनने को भी राजी नहीं। मैं उनसे बोला कि आप कैसे वैज्ञानिक हैं? वैज्ञानिक को तो खुले हृदय का होना चाहिए। आप मेरी बात सुनो तो, समझो तो, इस पर प्रयोग करके तो देखो। अगर प्रयोग से गलत सिद्ध हो जाए तो आप कहना गलत है। अभी आपने सुनी भी नहीं मेरी बात और मैं देखता हूँ कि बीच में एक दीवार खड़ी हो गई; हमारे बीच अब कोई कम्यूनिकेशन नहीं हो रहा और आप मेरी बात सुनने को भी तैयार नहीं। वे कहते, यह हो ही नहीं सकता। ढाई-तीन सौ साल से जो सिद्धान्त प्रचलित है, वह कैसे गलत हो सकता है? हद हो गई, वह फिजिक्स के हैड ऑफ दि डिपार्टमेन्ट हैं, और वे कह रहे हैं ऐसी अवैज्ञानिक बात! कोई साइंस की पत्रिका मेरे आर्टिकल को छापने को तैयार नहीं हुई बड़ी विचित्र बात है... छापो तो सही, उस पर विवाद होने दो, विपरीत तर्क पेश करो, प्रयोग से सिद्ध करो कि गलत है; कम से कम प्रकाशित तो करो, बाकी बातें बाद में होंगी। लेकिन खुद को तार्किक दिमाग का समझने वाले संपादक शीर्षक देखकर ही उस लेख को कचरे की टोकरी में फैंक देंगे।

हम जिनको वैज्ञानिक चित्त का आदमी कहते हैं, वे भी वैज्ञानिक नहीं है। उन्होंने जो जान लिया है, उसके कटघरे में वे भी बंद हैं; एक अदृश्य जंजीर उनको घेरे हुए है। तब तो बड़ी मुश्किल हो गई, हम जिनको अंधविश्वासी, धार्मिक, रूढ़िवादी, कट्टरपंथी कहते थे उनकी जंजीरें तो फिर भी दिखाई पड़ती हैं। मगर यह जो विज्ञान के घेरे में खड़ा हुआ आदमी है, इसकी जंजीरें देखना बड़ा मुश्किल है; इसकी भी अपनी, नई, चमकदार, आधुनिक, विश्वविद्यालय की उपाधियों से विभूषित जंजीरें हैं।

जिस प्रोफेशन में आप हैं, उस व्यवसाय में जो भी आपने जानकारी हासिल की है; आपका वह सूचना-भंडार ही आपके चारों तरफ दीवार बन गया है। उसके आर-पार आपको अब कुछ भी दिखाई नहीं देता। उसमें जरा भी ट्रांसपेरेन्सी, पारदर्शिता नहीं है। आपने खुद अपनी मजबूत जेल खड़ी कर ली है। प्राचीन कारा तो संभवत: उबाऊ और बासी हो गई थी, यह नई कारा ज्यादा लुभावनी और सम्मोहक है। पुरानी दीवारें तो मुफ्त वसीयत में मिली थीं, उनसे उतना लगाव नहीं था; आधुनिक दीवारें आपने खुद बड़े परिश्रम से निर्मित की हैं। इनसे गहन लगाव है। अत: और ज्यादा सतर्क होने की आवश्यकता है। सुबह की चर्चा को यहीं समाप्त करते हैं। आगे की बात संध्या जारी रखेंगे।

धन्यवाद।

प्रवचन-6

आध्यात्मिक स्वतंत्रता की ओर

(मुम्बई में 15.8.2006 को स्वतंत्रता दिवस एवं कृष्ण-जन्माष्टमीके अवसर पर दिए प्रवचन का द्वितीय अंश)

1. स्मृतियों का घेरा
2. कल्पना का कोड़ा, मन का घोड़ा
3. आशाओं का आश्चर्यलोक!
4. कारागृह का आकर्षण
5. भावनात्मक परतंत्रताएं
6. दिव्य असंतोष का जन्म
7. आंतरिक मुक्ति की दिशा
8. अहंकार—बंधनों का नाम है
9. परस्पर-तंत्रता की समझ
10. स्वर्णिम चुनौती व आमंत्रण

1. स्मृतियों का घेरा

आज सुबह मन के तल पर चार बिंदुओं की हमने चर्चा की; विश्वास, विचार, विज्ञापन और विज्ञान व अन्य तरह के ज्ञान। तथाकथित विज्ञान अभी पूरा-पूरा वैज्ञानिक नहीं हो पाया है। अब आगे थोड़ा और विमर्श करेंगे। पाँचवां बिन्दु मन के तल पर है; स्मृतियों का घेरा। अतीत में हमने जो जाना वह हमारी मैमोरी बनकर मौजूद है और हम उसके कटघरे में बन्द हैं। और वह मैमोरी हमको डायरेक्ट करती है कि हमको क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए? उदाहरण के लिए समझें। एक बच्चे का जन्म होता है तो सबसे पहला उसका सम्पर्क अपनी माँ से होता है। निश्चित रूप से माँ बच्चे को बहुत प्रेम करती है, बच्चा भी माँ को प्रेम करता है। पहली छवि जो उसके मन में बनी है वह माँ की बनी है—दि फर्स्ट इम्प्रेशन। अब इस इम्प्रेशन को लेकर बच्चा बड़ा होता है। एक दिन युवा हो जाता है; किसी युवती के प्रेम में पड़ता है।

मनोवैज्ञानिकों ने इस पर बहुत रिचर्स की है; एक लड़का एक खास लड़की के प्रेम में क्यों पड़ता है? खोजबीन के नतीजे बड़े आश्चर्यजनक हैं। वह उस लड़की के प्रेम में इसलिए पड़ा क्योंकि उस लड़की की कुछ क्वालिटीज, उसकी माँ की गुणवत्ताओं से मिलती-जुलती थीं। हो सकता है उसके बालों का ढंग, या संभव है उसकी आँखों का रंग, अथवा उसकी चाल या आवाज, चेहरे का हाव-भाव या उसका 'केयर' लेने का ढंग; कहीं उसकी माँ से मिलता-जुलता है। युवक का

पहला इम्प्रेशन अपनी माँ का है। वह माँ की प्रतिछवि ढूँढता फिर रहा है सारी दुनिया में। जैसे ही उसको थोड़ा सा मिलता-जुलता कहीं कुछ लगेगा वह उसके प्रेम में पड़ जायेगा।

लोग कहते है ना–'लव इज़ ब्लाइंड' प्रेम अंधा होता है। निश्चित रूप से अंधा होता है। युवक होकर भी छोटे बच्चे की तरह वह अभी अपनी माँ की खोज में है, कोई एकाध क्वालिटी मिलेगी बाकी क्वालिटीज तो नहीं मिलेंगी। हो सकता है कि नाक वैसी हो या आँख का रंग वैसा हो। लेकिन बाकी के गुण तो भिन्न होंगे, वहाँ से मुश्किल खड़ी होगी। यह जिसके प्रेम में पड़ा है उससे विवाह कर, पत्नी बनाकर अपने घर में ले आयेगा और फिर कलह शुरु हो जायेगी। वह जो खाना पकाती है, हो सकता है वह उसकी माँ जैसा न हो। इसलिए अधिकांश पतियों को अपनी पत्नी के हाथ का खाना कभी पसन्द नहीं आता। वे अचेतन रूप से हमेशा उम्मीद करते हैं कि माँ ने जैसा खाना खिलाया था; वैसा खिलाओ। ऐसा स्पष्ट रूप से उन्हें भी नहीं पता, लेकिन पत्नी के हाथ का भोजन अच्छा नहीं लगना बहुत कठिनाई पैदा कर देगा। पत्नी हैरान है, उसने कुकिंग क्लास ज्वाइन की है; होम साइंस में उसने बी०ए० किया है; जबकि माँ गाँव की गंवार थी, बिना पढ़ी-लिखी, वह क्या खाक खाना बनाती होगी! मगर इस पति को तृप्त नहीं कर सकेगी पत्नी, चाहे कांटिनेन्टल फूड ही पका ले। क्योंकि पति के मन में जो पहला इम्प्रेशन है; वह स्वीट पास्ट मैमोरी, माँ के हाथ का प्रथम स्वाद, वही उसे अच्छा लग सकता है। उसकी स्मृति उसे लगातार डायरेक्ट कर रही है। उसकी पसन्द-नापसन्द की कसौटियां, अच्छे-बुरे की परिभाषाएं, बहुत सी चीजें केवल स्मृति पर निर्भर हैं।

देखना जरा अपने भीतर झांककर, क्या आप अपनी स्मृतियों के द्वारा संचालित नहीं होते हैं? लोग महानगर में रह रहे हैं और गीत लिख रहे हैं कि एक प्यारा सा गाँव, उसमें पीपल की छाँव। अरे कविराज जी, आपको बचपन का गाँव और पीपल की छाँव इतनी अच्छी लगती है तो वहाँ जाते क्यों नहीं? काहे बेचारे मुम्बई महानगर की आबादी बढ़ा रहे हैं, जाओ भैया लौट जाओ अपने गांव की धूल-धवांस एवं गोबर की बदबू में! कविताएं लिखकर श्रोताओं को न सताओ। किंतु वह जाने वाले भी नहीं। मगर मधुर स्मृति में वही गांव बसा रहेगा, अच्छा उनको वहीं लग सकता है। इसका मतलब जहाँ वे रह रहे हैं, वहाँ दुखी रहेंगे। यहाँ वैसा गाँव नहीं है, वैसी पीपल की छाँव नहीं है। यह आदमी स्मृतियों से पीड़ित हो रहा है।

हमारी मैमोरी हमें ढंग-ढंग से सताा रही है और हमें वर्तमान जीवन का सुख नहीं लेने देती। वह हमें निर्देशित करती है, हम क्या करें, क्या न करें। अतीत प्रक्षेपित होकर भविष्य की योजना बनाता है। और ऐसा केवल व्यक्तिगत ही नहीं, सामूहिक रूप से भी होता है। भारत के लोग रामराज्य लाने के प्रयास करते रहते हैं। बेचारे नहीं ला पाते, तो कोई बात नहीं; पूरा देश रामलीला देखकर ही संतुष्ट हो जाता है। रामायण की कथा सुन ली... अहोभाग्य!

हमारे जीवन की बड़ी पसंद-नापसंद, प्रेम और घृणा के संबंध हमारी स्मृति पर आधारित हैं। जैसे एक व्यक्ति को देखकर आप अचानक प्रेम में पड़ जाते हैं; इसका उलटा भी होता है। किसी अनजान आदमी से आपकी मुलाकात हुई और कुछ विकर्षण, नफरत सी पैदा हो गई देखते ही। अभी ना कोई बातचीत हुई न उसके बारे में कुछ जानते, बस उसको देखते ही मन में घृणा पैदा हो गई। अगर इसको गहराई से खोजें, एनालिसिस करें तो आप पाएंगे; हो सकता है आपके स्कूल के शिक्षक जैसा यह आदमी दिखता हो।

उस शिक्षक को आप घृणा करते थे; शिक्षक बड़ा कठोर अनुशासनवादी था। उसने आपकी मारपीट की, डांटा-डपटा था, बेइज्जती की थी। बचपन की वह कड़वी याद कहीं स्मृति में बैठी है। और यह जो आदमी मिला है पच्चीस साल बाद, इस बेचारे का उस शिक्षक से कुछ लेना-देना नहीं है; एक बिल्कुल दूसरा ही आदमी है। संयोग की बात इसका नाक-नक्श, इसकी ऊँचाई, कपड़े पहनने का तरीका, इसके बाल की स्टाईल अथवा कोई अन्य चीज उस शिक्षक से मिलती-जुलती है जिससे आपको नफरत थी। उसकी क्लास आप कभी एटैन्ड करना नहीं चाहते थे। अचानक इस अजनबी से मुलाकात होती है और आपके मन में घृणा का भाव आ जाता है, आप इससे दूर हट जाना चाहते हैं।

ज़रा देखें, हम कितने गुलाम हैं अपनी स्मृतियों के। इस अजनबी का उस शिक्षक से कोई लेना-देना नहीं है। उस युवक की प्रेमिका का उसकी माँ से कोई सम्बन्ध नहीं है। संयोग, कोइन्सीडेन्स की बात है, कि कुछ गुण मिलते हैं। हमारे प्रेम और घृणा के नाते एकदम अचेतन स्मृति से संचालित हो रहे हैं। हम सामने मौजूद व्यक्ति से मोहब्बत या नफरत नहीं कर रहे हैं। हमारे मन में कुछ और ही बैठा हुआ है- पुराना इम्प्रेशन। हम अपने ही मेंटल इम्प्रेशन्स से प्रेम या घृणा कर रहे हैं। हम कितने गुलाम हैं अपनी स्मृति के! ख्याल आ जाए तो आप इस गुलामी को तोड़ देना चाहेंगे। लेकिन ख्याल न आए तो आप अपनी पूरी जिंदगी इसी गुलामी में बिता देंगे। अनजाने में इसकी खातिर लड़ने-मरने को तत्पर होंगे।

2. कल्पना का कोड़ा, मन का घोड़ा

मानसिक परतंत्रता का अगला बिंदु है कल्पना। हमारे मन में कल्पना की शक्ति है, एक इमेजिनेशन पावर है। हम कुछ कल्पना करते हैं; ऐसा होना चाहिए, वैसा नहीं होना चाहिए। फिर वह कल्पना हमसे क्या-क्या खेल खिलवाती है; आप जरा गौर करेंगे तो पायेंगे, अरे! मैं कल्पनाओं का गुलाम हूँ, किस बुरी तरह सपनों का शिकार हूँ। कार्ल मार्क्स एक सपना दिखाता है सारी दुनिया को—कम्यूनिज्म का सपना। एक कल्पना खड़ी हो जाती है हमारे मन में, एक ऊटोपिया- कि साम्यवादी आदर्श राज्य, सब कुछ बराबर होना चाहिए; आधी दुनिया कम्युनिस्ट हो जाती है। इतना बड़ा सपना देखा सारी दुनिया ने बीसवीं सदी में जिसका हिसाब नहीं; लाखों-करोड़ों लोग मारे जाते हैं उस सपने को पूरा करने के लिए।

अकेले रूस में एक करोड़ लोगों की हत्या लेनिन-स्टेलिन ने की, माओ ने चीन में करीब पचास लाख लोग मारे। सपना इतना सुंदर है कि बाधा पहुंचाने वाले आदमी को मारने में कोई हिचक नहीं होती; एक महान सपना पूरा करना है—साम्यवाद आ जायेगा तो दुनिया में स्वर्ग बस जायेगा। फिर साम्यवाद आ जाता है, आधी पृथ्वी साम्यवादी हो जाती है। मगर कोई स्वर्ग नहीं उतरता। हाँ, मार-काट मच जाती है, धरती लहूलुहान हो जाती है। मिट्टी लाल हो गई रूस और चीन की। गजब की लाल क्रान्ति हुई! बस खून बहा और कुछ भी नहीं हुआ। सत्तर-अस्सी साल के रक्त-रंजित प्रयोग के पश्चात अन्ततः रूस को वापिस लौटना पड़ता है। पीछे के द्वार से चीन में फिर पूंजीवाद की स्थापना हो जाती है। चेकोस्लोवाकिया और जर्मनी फिर साम्यवाद छोड़ देते हैं। साठ-सत्तर साल का प्रयोग बेकार गया। एक सामाजिक सपना देखा था, बड़ा भारी सामूहिक सपना था। फिर हमारे इन्डीविजुअल सपने

हैं छोटे-मोटे, जो हम देखते रहते हैं। एक बच्चा सपना देख रहा है बड़ी महत्वाकांक्षा, एम्बीशन उसकी है; मैं यह बन जाऊं, वह बन जाऊं। अब उस सपने की खातिर वह अपनी जिंदगी न्यौछावर कर देगा। अपने जीवन में वह कोई सुख न ले पायेगा।

कोई आदमी सपना देख रहा है, मुख्यमंत्री बन जाऊं, प्रधानमंत्री बन जाऊं; जिदंगी भर राजनीति की दौड़ में पड़ा रहेगा। कुटता-पिटता, जुते-गालियां खाता बेचारा किसी भी प्रकार बस दिल्ली पहुँचेगा। अपनी जिन्दगी न्यौछावर कर देगा मंत्री-कुर्सी पर बैठने के सपने के लिए। कुछ लोग सफल हो जाएंगे, हजारों लोग असफल होंगे। उन सबकी जिन्दगी तबाह हो जाएगी। और किसके लिए उन्होंने तबाह की? एक कल्पना की खातिर। तो कुछ सामूहिक सपने है जैसा मैंने कहा साम्यवाद का सपना आधी दुनिया ने देखा। कुछ सपने हैं हमारे व्यक्तिगत, जिन्हें हम एम्बीशन्स कहते हैं। मुझे यह बनना है, वह बनना है, मुझे यह पाना है, वहाँ पहुँचना है, मैं यह कर लूँ, वह कर लूँ। ये हमारे सपने हमें कितना दौड़ाते हैं, कभी चैन से जीने नहीं देते। फिर हमें लूटने वाले चालाक 'सपनों के सौदागर' भी हैं। हम शोषण कराने के लिए तैयार हैं, कोई न कोई सपने बेचेगा ही!

हम भी खूब परतंत्र हैं... अपने ही सपनों के गुलाम है! सपने जो कहते हैं हम वही करते हैं। झूठे सपनों की खातिर हम अपनी वास्तविक जिंदगी को कुर्बान कर देते और फलस्वरूप दुख भोगते हैं कि वह सपना पूरा नहीं हो पाया। एक आदमी बनना चाहता था कम्प्यूटर साइंटिस्ट, नहीं मिला उसे एडमिशन या सी०ए० बनना चाहता था, पाँच-छः बार फेल हुआ अन्ततः सेल्फ-कंडेम्नेशन से, आत्मग्लानि से भर गया, अब कहीं क्लर्क की नौकरी कर रहा है, लेकिन क्लर्क बनकर वह कभी संतुष्ट नहीं होगा क्योंकि उसने सपना देखा था सी०ए० बनने का। सपने ने उसकी जिंदगी बरबाद कर दी। वह क्लर्क बनने से कभी संतुष्ट न हो सकेगा।

जिसका सपना पूरा हो गया, वह तुरंत एक और विराट सपना देखने लगता है। जो सी०ए० या कम्प्यूटर साइंटिस्ट बन गया उसे अब भारत में नहीं रहना, विदेश का सपना सताने लगा। जो विदेश चले गए उन्हें होम-सिकनेस शुरु हो गई, वे गुनगुना रहे होंगे—एक प्यारा सा गाँव, उसमें पीपल की छाँव। उन्हें चिंता लगी है कि बच्चे बिगड़ रहे हैं, भारतीय संस्कृति से टूट गए, मादक पदार्थ के आदी हो गए, पत्नी से तलाक हो गया है। नया सपना- आ, अब लौट चलें अपने देश!

कोई सपना देख रहा है, किसी फिल्म अभिनेत्री से विवाह का। वह आदमी अपनी जिंदगी विनष्ट कर रहा है। इसका जिस किसी से भी विवाह होगा इसकी पत्नी इसे कभी संतुष्ट नहीं कर पायेगी; इसको कभी तृप्ति नहीं मिलेगी क्योंकि

इसके मन में बसी है एक अति सुन्दर कल्पना। सदा उससे तुलना चलती रहेगी। यद्यपि जैसे लोग पर्दे पर दिखाई देते हैं, वे सचमुच में नहीं होते। वह अभिनेत्री भी वास्तव में इतनी सुन्दर नहीं है, परदे पर बड़े मेकअप के साथ, लाइट अरेंजमेंट के साथ, बड़ी तरकीब से, ट्रिक फोटोग्राफी से इतनी सुन्दर दिखाई जा रही है।

उतनी सुन्दर कोई स्त्री कहीं होती नहीं। उतना सुन्दर और महा-शक्तिशाली कोई युवक होता नहीं जितना वह फिल्म का हीरो है। लेकिन जिस लड़की के मन में वह फिल्मी हीरो बस गया, अब इसका पति इसको कभी भी सेटिस्फाई नहीं कर पायेगा क्योंकि वैसा अद्‌भुत हीरो तो वह बेचारा हो नहीं सकता।

आपको पता नहीं कि उस हीरो की पत्नी भी उससे संतुष्ट नहीं है और हीरोइन के पतिदेव मनोचिकित्सक के चक्कर लगा रहे हैं अथवा आत्महत्या करने की सोच रहे हैं। क्योंकि उनकी कल्पना में कोई और लोग बैठे हैं जो उनकी जिंदगी तबाह कर रहे हैं। कल्पना का कोड़ा मनरूपी घोड़े को दौड़ाता रहेगा, दौड़ाता रहेगा- यह करो, वह करो, यह पाओ, वह पाओ।

3. सपनों व आशाओं का आश्चर्यलोक!

मैंने बचपन में एक बड़ी प्रसिद्ध कहानी पढ़ी थी—एलिस इन वंडरलैंड। बच्चों की उस कहानी में एलिस नामक एक छोटी सी लड़की आश्चर्यलोक में पहुँच जाती है। थकी-मांदी, भूखी-प्यासी, वह देखती है कोई पचास फुट दूर आश्चर्यलोक की महारानी खड़ी है। वह कह रही है बेटी आ मेरे पास, यह रहा भोजन, यह रखा है पानी। आ, यह स्वादिष्ट भोजन कर, यह ठण्डा पानी पी; तू बड़ी थकी-मांदी है। एलिस चलना शुरु करती है; घण्टा, दो घण्टा बीत गए। अचानक वह रुककर कहती है—रानी यह तुम्हारी कैसी दुनिया है, मैं दो घण्टे से चल रही हूँ और सिर्फ पचास-सौ फुट दूर खड़ी हो तुम मुझसे, मैं तुम्हारे पास ही नहीं आ पा रही हूं। रानी कहती है कि पागल ऐसे धीरे-धीरे चलकर कोई पास आता है, जरा तेजी से चल। तर्क ठीक लगता है; एलिस तेजी से चलना शुरु कर देती है।

धीरे-धीरे दोपहर आ गई, कड़ी धूप में पसीना-पसीना हो गई, अब तो सुबह से भी ज्यादा प्यासी और भूखी है लेकिन दूरी खत्म होने का नाम ही नहीं ले रही। दूरी उतनी की उतनी! फिर ठहरती, पूछती है कि महारानी यह कैसा आश्चर्यलोक है तुम्हारा, छः-सात घण्टे से कितनी तेजी से चल रही हूँ, पसीने से लथपथ हो गई हूँ। भोजन सामने दिखाई पड़ रहा है और मैं पहुँच नहीं पा रही। महारानी कहती है—पागल! दौड़; बिना दौड़े कुछ नहीं मिलता जिंदगी में, तेजी से दौड़।

एलिस दौड़ना शुरु कर देती है, हाँफती-दौड़ती हुई। फिर तो शाम ढलने के निकट आ गई सूरज छिपने लगा, अन्धेरा छाने लगा, अब तो दौड़ना भी सम्भव नहीं। धुँधला दिखाई पड़ने लगा; उसके पैर लड़खड़ा जाते, वह गिर जाती है। वह सवाल करती है—महारानी यह कैसी दुनिया है तुम्हारी? सुबह से शाम हो गई दौड़ते-दौड़ते और मैं पचास फुट की दूरी तय नहीं कर पाई महारानी अट्टहास करती और कहती है कि पागल जिस दुनिया से तू आती है वहाँ भी तो ऐसा ही होता है; वह कोई कम वंडरलैंड है। गौर से देख जरा उस दुनिया में... यहाँ तो बस सुबह से शाम हुई और तू प्रश्न उठाने लगी कि यह कैसी दुनिया है? तेरी आश्चर्यभूमि पृथ्वी पर जन्म से लेकर मृत्यु आ जाती है, सत्तर-अस्सी साल गुज़र जाते हैं। नब्बे-सौ साल कोई दौड़ता है, फिर भी मंजिल तक नहीं पहुँच पाता। मंजिल हमेशा उतनी ही दूर रहती है, जितनी कभी थी।

तुम क्या सोचते हो सिकंदर, हिटलर और नेपोलियन को मंजिल मिल गई? उन्हें भी मंजिल नहीं मिली। आप सबको पता होगा जब सिकंदर मरा तो उसने कहा था कि मेरे हाथ अर्थी के बाहर लटके रहने देना ताकि दुनिया देख ले कि विश्व विजेता सिकंदर भी एक भिखारी की तरह जा रहा है, खाली हाथ। मंजिल मिलनी असंभव है क्योंकि मंजिल कल्पना में है। जैसे होरीजोन, क्षितिज पर जमीन और आकाश मिलते दिखते हैं। वास्तव में ऐसी कोई जगह नहीं है लेकिन दिखाई तो ऐसा पड़ता है कि होगा कोई तीन-चार किलोमीटर दूर। चलेंगे तो अभी घंटे-दो घंटे में पहुँच जाएंगे। जिदंगी भर हम चलते रहें, कभी भी क्षितिज हमारे हाथ में नहीं आ सकता क्योंकि क्षितिज है ही नहीं। आभास मात्र है।

ठीक इसी प्रकार हमारे मन की कल्पनाएं हैं; हमारी महत्वाकांक्षाएँ, एम्बीशन्स, क्षितिज की भाँति हैं, दौड़ते रहो, दौड़ते रहो, दूरी जरा सी भी नहीं घटती।

जिस आदमी के पास एक लाख रुपये हैं वह सोचता है दो लाख हो जाएं फिर मज़ा करूँगा। जब तक दो लाख हो पाते हैं कल्पना और आगे बढ़ जाती है, वह कहता है दो लाख में क्या होगा, चार लाख होना चाहिए। फिर दौड़ता है, मेहनत करता है, दो-चार साल में हो सकता है वह चार लाख कमा ले, लेकिन फिर कल्पना कहेगी, अरे! महँगाई का ज़माना है; चार लाख में आजकल कहाँ गुज़ारा होता है! कम से कम आठ लाख तो चाहिए।

जितना है उससे दोगुना दूर अपनी मंजिल को वह स्थापित कर लेता है। जिस दिन आठ लाख हो जाएंगे उसकी कल्पना कहेगी सोलह लाख से कम में मजा नहीं आ सकता। मन दौड़ता चला जाएगा, दौड़ता ही चला जाएगा।

हम कितने गुलाम हैं अपनी कल्पनाओं के, जरा पलटकर जिंदगी की आत्मकथा देखें। हम किन चीजों के पीछे दौड़े, वे कहीं हैं ही नहीं सिवाय कल्पित सपनों के।

3. आशाओं का आश्चर्यलोक!

अंतिम, सातवीं गुलामी मन के तल पर है—आशा की गुलामी। जब तक हमें आशा है, हमें भरोसा है कि ऐसा-ऐसा हो जाएगा; उस आशा के सहारे हम जी रहे हैं। एक महान दार्शनिक कवि घनी निराशा में था। उसे समझ नहीं आ रहा था कि जीवन का लक्ष्य क्या है? उद्देश्य क्या है? हम क्यों जीएं? बहुत सोचने-विचारने पर भी कोई उत्तर न मिला। एक दिन उसने ऊपर आंखें उठाकर आकाश से पूछा कि हे आकाश, तू तो सृष्टि के शुरुआत से लेकर अब तक की पूरी कहानी का साक्षी है; अरबों-खरबों लोगों को इस धरती पर चलते-फिरते देखा है, जरा तू बता कि लोग क्यों जी रहे हैं? किसलिए? आकाश से हँसी की आवाज़ आई, उसने कहा—'आशा के सहारे।' बस आशा के सहारे लोग जीए चले जा रहे हैं।

आज तक किसी की आशा पूरी नहीं हुई; एक दृष्टांत नहीं है कि किसी की पूरी हुई हो। आशा करते-करते बस यही होता है कि हम निराशा की गर्त में गिर जाते हैं। वे लोग जो बड़े आशावान थे, बड़े आप्टीमिस्टिक थे, वे ही पैसीमिस्टिक और निराशावादी हो जाते हैं; एक दिन डिप्रेशन में चले जाते हैं। आशा-निराशा का खेल चलता रहता है, इन दोनों के बीच में पेंडुलम के समान हम डोलते रहते हैं।

मैंने सुना है महाशराबी मुल्ला नसरुद्दीन के बारे में। एक दिन अपने घर के बाहर रात बारह बजे सड़क पर पड़ा हुआ था बेहोश, शराब पीए हुए। एक अजनबी ईसाई पादरी वहाँ से गुजरा। नसरुद्दीन ने उससे कहा कि फादर, मेरी मदद करो। मुझसे उठते नहीं बन रहा। मैं पहली मंजिल पर रहता हूँ मुझे वहाँ तक छोड़ आओ। मिशनरी तो ऐसा मौका कभी चूकते नहीं। क्योंकि उनके ग्रन्थ में लिखा है सेवा करके ही स्वर्ग मिलता है। वे तो तलाश में ही रहते हैं कि किसी दुर्भाग्यशाली की सेवा करने का मौका मिल जाए। अगर सेवा करने को न मिले तो बेचारे कैसे स्वर्ग जाएंगे? उनका स्वर्ग लोगों की बदकिस्मती पर निर्भर है। पादरी ने उसे तुरन्त खुशी-खुशी कन्धा दिया, उसको सीढ़ियां चढ़ाईं। फिर सोचा दरवाजा खोलेंगे उसके परिवार के लोग... माँ या पत्नी या पिता होंगे, पता नहीं वे कहीं ऐसा न समझें कि मैं भी इसका दोस्त हूँ, मैंने शराब पिलाई है। तो उसने सोचा कि जैसे ही दरवाजा खुलेगा, मैं इसको धक्का देकर भाग खड़ा होऊंगा ताकि किसी से मुलाकात न हो, बातचीत न करनी पड़े। वरना वे पूछेंगे रात बारह बजे तुम कैसे लेकर आ रहे हो?

तुम्हीं ने शराब पिलाई है क्या?

पहली मंजिल पर जाकर देखा, द्वार अंदर से बंद नहीं था, नसरुद्दीन को उसने धक्का दिया और सीढ़ियों से उतरकर नीचे आया। नीचे आकर उसने देखा एक और वैसा ही आदमी पड़ा हुआ है; थोड़ी हैरानी हुई... रात का अन्धेरा है शायद ठीक से समझ में नहीं आ रहा। उससे पूछा कि भाई कहाँ रहते हो? उसने कहा पहली मंजिल पर। पादरी ने कहा—क्या चाहते हो? उसने कहा, ऊपर मुझे छोड़ आएं; मुझे थोड़ा सहारा दें। उसकी आवाज भी मिलती-जुलती लग रही थी... पहले आदमी जैसी! मिशनरी ने सोचा, हो सकता है जुड़वाँ भाई हों—दोनों पियक्कड़। अभी एक को छोड़ कर आए, यह दूसरा आ गया। खैर, अपने को क्या करना! सेवा करो, स्वर्ग जाओ, इनकी मुसीबत ये जानें। सहारा दिया; इसको सहारा देना थोड़ा मुश्किल पड़ा। बुरी हालत थी, मुश्किल से ऊपर तक पहुंचाया। पूछा—यही दरवाजा है? 'हाँ' संनते ही उसने दरवाजा खिसकाया, धक्का दिया और भागा नीचे।

विचित्र संयोग की बात एक तीसरा आदमी भी बिल्कुल वहीं पड़ा हुआ था। इस तीसरे आदमी की हालत और भी खतरनाक नजर आ रही थी। लगता है कोई फ्रेक्चर-व्रेक्चर हुआ है, हाथ-पैर टूटे हैं। उसे हाथ हिलाने में भी बहुत तकलीफ थी। मिशनरी ने पूछा, पहली मंजिल पर रहते हो? बामुश्किल उसने सिर हिलाया; बोलते नहीं बन रहा था। पादरी ने उसको उठाया, मदद दी। इस दफा पादरी थोड़ा घबराया हुआ था, कहीं कोई भूत-प्रेत तो नहीं! तीन आदमी एक ही मकान में रहने वाले, तीन-तीन जुड़वां भाई तो हो नहीं सकते; एक सी शक्ल-सूरत! उसने सोचा कि इस बार मैं तेजी से दौड़ लगाकर निकलूंगा। उसे धक्का मारकर दरवाजे के भीतर किया और भागा छलांग लगाता हुआ कि कहीं फिर कोई न मिल जाए।

'जिससे डरते थे वही बात हो गई, राहों में उनसे मुलाकात हो गई!' एक चौथा आदमी और पड़ा हुआ था। पादरी घबरा गया कि सपना देख रहा हूँ अथवा मैंने शराब पी रखी है? ये क्या हो क्या रहा है? उससे पूछा कि भाई कौन हो? तुम्हारे जैसे तीन आदमियों को मैं ऊपर छोड़ कर आया हूँ।

वह बोला- वे तीन आदमी नहीं थे, मैं ही था- मुल्ला नसरुद्दीन।

पादरी ने डरते हुए पूछा—मैं सीढ़ी उतरता हूँ, उससे पहले ही तुम कैसे आ जाते हो यहाँ? मुल्ला बोला—फादर, आप जिसे घर का दरवाजा समझ रहे हैं, वह लिफ्ट का दरवाजा है; आप मुझे नीचे पटक देते हैं।

मिशनरी ने कहा कि भले-मानुष तुम बोले क्यों नहीं इतनी देर से? नसरुद्दीन ने कहा कि मैं आशा कर रहा था कि आप अगली बार शायद ऐसी भूल न करें।

आशा के सहारे हमारे भी फ्रेक्चर हो गए हैं, हाथ पैर बिल्कुल टूट गए हैं, बहुत चोटें खाई हैं। कोई पूछे कि हम किसलिए जी रहे हैं? आशा के सहारे। एक कहावत है, आशा से आकाश थमा है। यह मूलहीन आशा की अमरबेल हमारे जीवन-वृक्ष को लपेटकर खून चूस रही है। यह जंजीर हमको बुरी तरह जकड़े हुए है; काश हमें यह दिखाई पड़े तो हम इस बंधन से मुक्त हो पाएं।

4. कारागृह का आकर्षण

पहले शरीर के तल की, सात इन्द्रियों की गुलामी की बात हमने समझी। मन के तल पर सात गुलामियों को संक्षेप में फिर से दोहरा दूँ—विश्वास, विचार, विज्ञापन, ज्ञान-विज्ञान, स्मृति, कल्पना और आशा; ये हमारी मानसिक जंजीरें हैं जिन्हें हम आभूषण समझ कर पहने हुए हैं और कोई छीनने की कोशिश करे, तो हम खुद ही उससे लड़ पड़ेंगे।

फ्रांस में 1917 की क्रान्ति में ऐसा हुआ। वहाँ एक प्रसिद्ध जेल थी, जिसमें आजीवन कारावास प्राप्त अपराधियों को बन्द रखा जाता था। क्रान्तिकारियों ने जब बगावत की, सत्ता पलटी तो उन्होंने सोचा कि उन बेचारे अपराधियों को मुक्त कर दिया जाए। हजारों कैदी बंद थे, जो उसमें गया, वह जिन्दगी भर के लिए ही गया था; उसकी तो लाश ही बाहर निकलनी थी। क्रान्तिकारियों ने सबसे पहले जाकर उसके दरवाजे खोले; सबकी जंजीरें हटा दीं और उनको कहा—जाओ, तुम लोग आज से स्वतंत्र हो। क्रान्तिकारी सोच रहे थे कि हमने बड़ा उपकार किया है।

शाम होते-होते उन्हें पता चला कि हम भ्रान्ति में हैं; सारे क्रान्तिकारी भ्रान्ति में ही होते हैं। क्रान्तिकारी की जगह उन्हें भ्रान्तिकारी कहना बेहतर होगा।

शाम होते-होते सारे कैदी वापिस लौट आए। उन्होंने कहा कि क्षमा करें, बाहर हमारा दिल नहीं लगता। हम में से कोई यहाँ बीस साल से है, कोई सत्तर साल से बन्द है, यही हमारी जिन्दगी है; हम बाहर कहाँ जाएं? न कोई जान-पहचान बची, घर-परिवार के लोग कहाँ गए, उनका क्या हुआ? कुछ पता-ठिकाना नहीं। कोई जिन्दा भी हैं या खत्म हो गए हैं? वे हमें नहीं पहचानेंगे, हम उन्हें नहीं पहचानेंगे। अब तक हमारी दूसरी-तीसरी पीढ़ी आ गई होगी, साठ-सत्तर साल से हम बंद हैं।

हम कौन सा काम-धन्धा करें? कौन हमें नौकरी देगा? और हमारी आदतें बिगड़ गई हैं... उन जंजीरों पर ही हम सिर रख कर सोते थे; वही हमारी तकिया थीं। और यहाँ जेल में एक सुरक्षा थी, व्यवस्था थी, सब सुविधाएं थीं। समय पर भोजन मिल जाता था। बीमार पड़ते थे, जेल का डाक्टर हमारा इलाज करता था।

बाहर हम कहाँ जाएँ, क्या करें? क्षमा करें, हमें वापिस हमारी जंजीरें दें, उनके बिना तो हमें रात को चैन से नींद भी नहीं आयेगी। कहाँ सोएँ?

हम सब भी ऐसे ही गुलाम हैं, मानसिक तल पर। इन जंजीरों को छोड़ना इतना आसान नहीं है। यह ख्याल भी आ जाए कि जंजीर है, यही बड़ी कठिन बात है। आपका मन तो होगा कि मेरी बात का विरोध और प्रतिकार करें कि आप ये कैसी बातें बता रहे हैं? कौन सी स्वतंत्रता सिखा रहे हैं? आपकी समझ व सहयोग के बगैर मानसिक स्वतंत्रता नामुमकिन है। इन सात बिंदुओं पर हमें अपने ही मन से स्वतंत्र होना है।

बाहर की जो स्वतंत्रता है राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक इत्यादि; वह दूसरे से स्वतंत्रता है; फ्रीडम फ्रॉम दि अदर। भारत आजाद हुआ पन्द्रह अगस्त को, किससे? अंग्रेजों से। अंग्रेज दूसरे थे। फ्रीडम फ्रॉम दि अदर, दूसरे से स्वतंत्रता मिली। यहाँ आध्यात्मिक स्वतंत्रता की बात चल रही है, वह है–फ्रीडम फ्रॉम दि सैल्फ; स्वयं से स्वतंत्रता, अहं से मुक्ति। इस भेद का ख्याल रखिए।

प्रसिद्ध विचारक सार्त्र ने कहा है कि दि अदर इज़ हैल; दूसरा नर्क है। ओशो ने इस वचन को सराहा है और सुधारा भी है। उन्होंने कहा है कि 'येस दि अदर इज़ हैल बिकॉज यू ऑर यू'। मैं, मैं हूँ इसलिए दूसरा, दूसरा है। जब तक मैं-भाव न मिटे तब तक दूजा-भाव भी नहीं मिटेगा और नर्क मौजूद रहेगा। असली बात है मुझसे स्वतंत्रता; स्वयं के अहंकार से स्वतंत्रता। ये जो मानसिक जंजीरें पहन रखी हैं, मैंने खुद ही पहन रखी हैं, और मैं ही उनको सम्भाल भी रहा हूँ और मांग भी रहा हूँ कि और जंजीरें दो। मैं उनमें पॉलिश करता हूँ, चमकाता हूँ, उनको आभूषण समझता हूँ और कोई मुझसे छीने तो मैं लड़ने-झगड़ने को तैयार हो जाऊँगा। जब तक हमें खुद दिखाई न पड़े कि हम किस प्रकार की गुलामी में फंसे हुए हैं तब तक इस जंजाल से बाहर निकलना सम्भव नहीं।

5. भावनात्मक परतंत्रताएं

मन से भी और गहरी गुलामी है हृदय के तल पर। हृदय अर्थात् भावनाओं का जगत। वहाँ भी सात प्रकार की मुख्य गुलामियाँ हैं; पहला काम (सेक्स), दूसरा क्रोध (ऐंगर), तीसरा लोभ (ग्रीड), चौथा मोह (अटेचमैन्ट), पाँचवाँ ईर्ष्या (जेलेसी), छठवाँ द्वेष (ऐनिमिटी) और सातवाँ भय (फीअर)। इन सात प्रकार की भावनाओं की जंजीरें हमें बाँधे हुए हैं। मन से भी ज्यादा गहरी। मन की जंजीरों से तो पार होने का ख्याल हमें कभी आ भी सकता है... यद्यपि मुश्किल है, लेकिन फिर भी आ

सकता है। लेकिन ये जो सात प्रकार की भावनाएं हैं इनमें हम इतने गहरे जकड़े हुए हैं कि हमें समझ भी नहीं आता कि हम इनके गुलाम हैं।

जब क्रोध का भूत आप पर सवार होता है, गुस्से में आप वे काम कर जाते हैं जो आपको नहीं करने चाहिए थे। क्या आप क्रोध के गुलाम नहीं है? कितनी बार आपने पश्चाताप किया कि मैं क्रोध नहीं करूँगा लेकिन जब क्रोध आता है तब उस समय सब होशो-हवास गुम हो जाता है। आप ऐसी बातें कह जाते हैं जो नहीं कहने योग्य थीं; ऐसे कर्म कर जाते है जो नहीं करने योग्य थे।

जब लोभ का पागलपन आप पर सवार होता है; तब आप ऐसा कुछ कर जाते हैं जो बिल्कुल करने जैसा नहीं था। आप भली-भाँति जानते हैं कि चोरी करना ठीक नहीं, शोषण करना ठीक नहीं, लेकिन जब मौका मिलता है, चोरी करने का तब सारे उपदेश आदि विस्मृत हो जाते हैं। जरा भी शर्म-संकोच नहीं करते, भूल-भाल जाते हैं, मर्यादा और सिद्धांत की बातें; दुकान पर ग्राहक की जेब बड़ी आसानी से काट लेते हैं। फिर दर्जनों दलीलें देकर उसका औचित्य समझायेंगे कि यह तो करना ही पड़ेगा; लेकिन आप भली भाँति जानते हैं कि आप जरूरत से ज्यादा वसूल रहे हैं। आपका लोभ आपको मजबूर कर रहा है; पाँच रुपये की चीज आप पच्चीस रुपये में बेचने की कोशिश कर रहे हैं और पचास का ग्राहक मिल जाए तो आप पचास लेने में भी संकोच न करेंगे।

ईर्ष्या में जल-भुनकर ऐसे काम कर जाते हैं जो एक सभ्य सुशिक्षित मनुष्य से अपेक्षित नहीं है। और जब द्वेष, दुश्मनी और शत्रुता की भावना सिर पर सवार होती है तब एक खूंखार जानवर की तरह हो जाते हैं। आप आदमी नहीं रह जाते, कुछ और हो जाते हैं। आप पशु बन जाते हैं। पशु शब्द का अर्थ जानते हैं, क्या है? पशु का अर्थ है, जो पाश में बँधा है, जो बंधन में है। क्या हम इन भावनाओं के बंधन में नहीं हैं? अगर हम बँधे हैं तो हम भी पशु हैं।

मित्रो! शरीर के तल पर सात प्रकार की ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां हमें मजबूर कर रही हैं। मन के तल पर सात मुख्य बंधन हैं। और उससे भी गहन, हृदय के तल पर तो हमारी गुलामी का कोई हिसाब नहीं। हम इस बुरी तरह कैद हैं कि वहाँ हमारा बिल्कुल भी वश नहीं चलता। हम इसके विपरीत कुछ करना भी चाहें तो हम नहीं कर सकते। कामवासना जब पकड़ती है फिर बिल्कुल जानवर की तरह हो जाते हैं; ठीक वही हालत उत्पन्न हो जाती है क्रोध में, लोभ में, मोह, ईर्ष्या, द्वेष और भय की स्थिति में। डर जब प्राणों को घेरता है, चेतन मन के ज्ञान को भूल-भालकर हम भय के वशीभूत हो कुछ भी कर गुजरने को लाचार होते हैं।

ये सात प्रकार की भावनात्मक परवशताएं हैं। इनको जरा समझना और तब एक बड़ी बेचैनी घेरेगी कि मैं कैसा इन्सान हूँ? मैं अपने आपको एक स्वतंत्र आदमी कहता हूँ, क्या मैं एक मनुष्य कहलाने योग्य हूँ? मेरा क्या अधिकार है? अपने आप पर एक सवाल उठेगा, खुद की जीवन-शैली पर प्रश्नचिन्ह लगेगा।

6. दिव्य असंतोष का जन्म

मैं चाहता हूँ आपके प्राण एक बेचैनी से भर जाएं। मैं आपको सांत्वना या सिद्धान्त देने नहीं आया, मैं उपदेश या धर्म-शिक्षा देने भी नहीं आया। आपके भीतर एक रेस्टलेसनेस पैदा करना चाहता हूँ। एक क्वश्चन मार्क लगा देना चाहता हूँ। जरा सोचें क्या आप एक स्वतंत्र व्यक्ति हैं? गहराई से देखेंगे तो प्राण छटपटा उठेंगे। पूरी जिन्दगी पर एक प्रश्नचिह्न लग जायेगा कि मैं यह क्या कर रहा हूँ? यह कैसी जिन्दगी जी रहा हूँ? सौभाग्य की घड़ी होगी अगर आपके प्राण छटपटा उठें; एक डिवाइन डिस्कन्टैन्टमैंट, एक दिव्य असंतोष आपको घेर ले। आपके प्राणों में एक प्यास भभके, तड़फ उठे, वही पीड़ा आध्यात्मिक स्वतंत्रता की ओर ले जायेगी।

शारीरिक, मानसिक और हार्दिक गुलामी; फिजीकल, मैन्टल एण्ड इमोशनल डिपैन्डैंस; इस आंतरिक दासता, इनर-स्लेवरी की पहचान से ही मुक्ति का ख्याल पकड़ेगा। सिर्फ राजनीतिक स्वतंत्रता को पूर्ण स्वतंत्रता मत मान लेना। वह अच्छी है, उपयोगी है। आर्थिक स्वतंत्रता को सब कुछ मत समझ लेना। श्रेष्ठ है वह, जरूर होनी चाहिए। अनिवार्य है, किंतु पर्याप्त नहीं। जीवन के परम आनंद को जानने के लिए स्प्रीच्युअल रिवोल्युशन, एक आध्यात्मिक क्रान्ति से गुज़रना होगा। जब तक आपका सहयोग न हो वह क्रान्ति नहीं हो सकती। वह स्वयं के अंदर स्वयं को ही नया जन्म देने जैसी बात है। द्विज बनना होगा।

अंग्रेजों से छुटकारा दिला दिया हमें महात्मा गाँधी, नेहरू, सुभाष और वल्लभ भाई पटेल ने, लेकिन ये जो गुलामियां मैंने कही, इनसे छुटकारा कोई नहीं दिला सकता; जब तक आपको ही समझ में न आ जाए क्योंकि ये बेड़ियां आपने खुद पहनी हैं। जब तक पीड़ा और दंश न हो, यह कांटा न चुभे कि मैं एक पशु की भांति जीवन जी रहा हूँ, तब तक वह बगावत नहीं हो सकती जिससे आध्यात्मिक मुक्ति मिलती है। तब तक हम ठीक-ठीक मनुष्य नहीं बन सकते।

सारे इतिहास में कुछ गिने-चुने लोग उस मोक्ष की स्थिति को प्राप्त हुए हैं, मोक्ष का मतलब होता है परम स्वतंत्रता; दि अल्टीमेट फ्रीडम। चेतना अपने स्वभाव में स्थित हो जाए; सचमुच में 'स्व-स्थ' हो जाए, वही है आत्मिक स्वाधीनता।

संत कबीर साहब कहते हैं कि-

घूंघट के पट खोल, तोहे पिया मिलेंगे।

ओशो ने इस पद की व्याख्या करते हुए समझाया है—तीन प्रकार के घूंघट हैं जो हम ढांके हुए हैं। परमात्मा इन तीन प्रकार के घूंघटों के भीतर बंद है।

तीन दीवारें हैं—फिजीकल, मैन्टल और इमोशनल। इन कैदों से बाहर वही आ सकता है, जिसे कैद नज़र आने लगी। लेकिन हम तो स्वतंत्रता की बात भी करते हैं तो वह बात भी बस बातचीत ही होती है; केवल शास्त्रीय बकवास होती है। मोक्ष क्या है? और कैसे आवागमन से मुक्ति मिले? बस बातचीत ही। उसके लिए हम कोई प्रयास नहीं करते। क्योंकि अभी हमें पता नहीं कि गुलामी है क्या? गुलामी याने क्या? अभी उसकी पीड़ा और दंश ही हमने नहीं भोगा!

मैंने सुनी है ओशो से एक बोध कथा- किसी सराय में, एक क्रान्तिकारी नवयुवक जो बड़ी विद्रोही प्रवृत्ति का था, रात को ठहरा। रात उसने सुनी एक तोते की दर्द भरी आवाज।

तोता चिल्ला रहा था—स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतन्त्रता! यह कहानी पुरानी है, उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले की। वह युवक बड़ी तकलीफ में पड़ गया; रात चैन से सो न सका। पिंजड़े में बंद था, सराय के मालिक का वह तोता। रात भर वह पुकारता रहा—स्वतंत्रता, स्वतंत्रता! यह युवक जो स्वयं एक स्वतंत्रता

संग्राम सेनानी था; इसके मन में बड़ी पीड़ा हुई उस तोते का कातर स्वर सुन कर। मन में आया कि उसे मुक्त कर दूँ।

इसके पहले की सराय का मालिक उठे, भोर होने के पूर्व वह युवक जल्दी उठा। उसने पिंजड़ा खोला, पिंजड़े में से तोते को बाहर निकालकर खुले आकाश में छोड़ दिया और बड़ा प्रसन्न हुआ कि एक परतंत्र आत्मा को मैंने आज मुक्त कर दिया।

सुबह होटल का मालिक उठा; खाली पिंजड़े को देख उसने पता लगाया कि तोता कहाँ गया? इस साहसी युवक ने कहा कि मैंने उस तोते को छोड़ा है। तुमने ठीक नहीं किया उस लाचार पंक्षी को पिंजड़ें में बंद करके। हर प्राणी को स्वतंत्रता का जन्मसिद्ध अधिकार मिलना ही चाहिए।

जब ये दोनों बातचीत ही कर रहे थे तभी वह तोता उड़ता हुआ आया, पिंजड़े के अन्दर जा बैठा और फिर चिल्लाने लगा–स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता!

होटल मालिक हँसने लगा, बोला- नवयुवक तुम तोतों को जानते नहीं? यह जो कह रहा है 'स्वतंत्रता', सिर्फ एक कोरा शब्द है। इसका कोई मीनिंग, इसका अर्थ इसको नहीं पता। तोते को जो सिखा दो, वही बोलने लगता है; राम-राम सिखा दो राम-राम बोलने लगता है, अल्लाह-अल्लाह सिखा दो अल्लाह-अल्लाह कहने लगता है। तोता तो तोता है; वह तो टेपरिकार्डर की कैसेट की भांति है जो इसमें टेप कर दो वही-वही बजता रहेगा... बजता रहेगा; इसको कोई समझ थोड़े ही है!

यह कहानी सिर्फ तोते की कहानी नहीं है। मैं दूर-दूर घूमता हूँ, हजारों लोगों से मुलाकात होती है; और मुझे बड़ा दुख होता है कहते हुए कि अधिकांश मनुष्यों की कहानी यही है। वे जब कहते हैं स्वतंत्रता, उन्हें इसका अर्थ भी नहीं पता कि वे क्या कह रहे हैं? वे जब कहते हैं गुलामी से छूटना है, उन्हें इसका अभिप्राय भी नहीं मालूम। उन्हें गुलामी भी नहीं मालूम की गुलामी क्या है? जब दूसरा हमें बाँधता है; वह गुलामी तो बहुत स्थूल है। असली गुलामी वह है जो हमने ही अपने-आप को ओढ़ा रखी है।

इस स्प्रीच्युल स्लेवरी से मुक्त होने की दिशा में अगर कुछ कदम आप उठाएं तो कुछ हो सकेगा। प्राण उस पीड़ा से भर जाएं, कांटे चुभें, एक असंतोष आपको घेर ले; तब जाकर मुक्ति की दिशा में कदम उठ सकते हैं।

7. आंतरिक मुक्ति की दिशा में...

सात-सात बिन्दु मैंने कहे शरीर के तल पर, मन के तल पर और हृदय के तल पर; इन इक्कीस बिन्दुओं के इकट्ठे जोड़ का नाम है—अहंकार। अगर एक शब्द में कहना हो इन सबको, इतने विभाजन करके विस्तार से नहीं, तो उसका संक्षिप्त नाम है- ईगो, मेरा होना, मैं-भाव, अहंकार। इस अहं से मुक्ति, आध्यात्मिक स्वतंत्रता है। हम स्वयं का होना किसे कहते हैं? इस माटी की देह को, विचारों के संग्रह एवं ज्ञान के भण्डार मन को, इन भावनाओं, वासनाओं व कामनाओं के जोड़ को? इनका मिला-जुला नाम है—मैं।

दूसरे लोग मुझे एक नाम से पुकारते हैं; ए, बी, सी, डी... मेरा कुछ नाम है। माता-पिता ने मेरा नाम रखा। किसी का नाम राम या कृष्ण है, रहीम या रहमान है, किसी का रमेश है। दूसरे तो आपको नाम से पुकारते हैं; आप अपने आपको किस नाम से पुकारेंगे? आपने भी एक नाम रखा है, स्वयं के लिए—मैं। जब मैं कहता हूँ मुझे भूख लगी तब मैं शरीर के होने को 'मैं' समझ रहा हूँ। शरीर को भूख लगी और मैं कह रहा हूँ मुझे भूख लगी। मेरे मन में कुछ विचार आया और मैं कहता हूँ कि यह मेरा विचार है। वास्तव में कोई भी मेरा विचार नहीं है। यह मैंने किन्हीं किताबों से पढ़ा है, किसी से सुना है, यह अखबारों की कटिंग है; इसमें मेरा कुछ भी नहीं लेकिन उसको मैं कहता हूँ, मेरा विचार। मैं कहता हूँ यह मेरा शरीर यद्यपि यह मेरा शरीर नहीं है; यह माता-पिता से मिला है। उपनिषद के ऋषि इसको कहते हैं, अन्नमय कोष, यह अन्न से बना है, यह मेरा नहीं है। यह भोजन से निर्मित है। और माता-पिता से जो अंश मिला था, वह माता-पिता के द्वारा किए भोजन से निर्मित हुआ था। माता-पिता के शरीर की कंटिन्युटी में बच्चे हुए, फिर उन्होंने भोजन करना शुरु कर दिया, उनका शरीर बड़ा होने लगा फिर वे आगे और बच्चे पैदा कर जायेंगे।

यह शरीर कुल मिलाकर अतीत का संग्रहित भोजन है और कुछ भी नहीं। जो आप खा-पी रहे हैं, उसका यह स्टोर-हाऊस है। अगर एक दिन आप भोजन न करें तो आपका करीब चार सौ ग्राम वजन घट जायेगा, एक दिन में। शरीर रोज रिप्लेस हो रहा है; रोज नया भोजन चाहिए। चार सौ ग्राम खत्म हो रहा है रोज। प्रतिदिन उसमें रिप्लेसमेंन्ट चाहिए तब शरीर निरंतर नया-नया बनता रहता है।

शरीर मेरा नहीं है, यह भोजन से निर्मित है और मन भी मेरा नहीं है, यह

विचारों का संग्रह है जो मैंने बचपन से सुने, माता-पिता से, परिवार से, स्कूल में पढ़े, शिक्षकों एवं किताबों से ग्रहण किए, फिर अखबार, रेडियो, टेलीविज़न, यहाँ-वहाँ, चारों तरफ से विचार बटोर लिए। विचार मन का आहार है। कुछ अंधविश्वास समाज से ले लिए, कुछ मेरे संस्कारों में समा गए, कुछ शिक्षा से मिल गए। चारों तरफ जो आबोहवा थी, जो प्रचार चल रहे थे, वहाँ से कुछ ग्रहण कर लिए। कहीं का ईंट कहीं का रोड़ा, भानुमति ने कुनबा जोड़ा... इस कूड़े-कचरे की गठरी को मैं कहता हूँ, मेरा मन; यह भी मेरा नहीं है। यह शिक्षा-संस्कार, भाषा के द्वारा, किताबों-विज्ञापनों के द्वारा, जाने-अनजाने में मेरे अंदर जमाई गई संस्कारित पर्त है।

मन के और भीतर हैं भाव; वे भी मेरे नहीं है। एक कैमिकल ढांचा है शरीर के भीतर। कुछ खास हारमोन्स तथा न्यूरोट्रांसमिटर्स नामक रासायनिक पदार्थ हैं जो भावनाएं पैदा कर देते हैं। एक खास हारमोन की जरा सी मात्रा भीतर बढ़ जाए; क्रोध या भय उत्पन्न हो जाता है। वह इंजेक्शन लगाकर भी पैदा किया जा सकता है; वह क्रोध मेरा नहीं है। क्रोध भीतरी ग्लैंन्ड्स से, अंत:स्रावी ग्रंथियों से पैदा हो रहा है या बाहरी इंजेक्शन लगाकर; उसमें कुछ फर्क नहीं है। वह एक कैमिकल ही है, हम जिसके गुलाम हैं।

सैक्स हारमोन का जरा का तल बढ़ जाए भीतर कामवासना पैदा हो जाती है; आपरेशन के द्वारा एक विशिष्ट ग्रंथि निकाल दी जाए तो कामवासना समाप्त हो जाएगी। जिसको हम अपनी समझ रहे थे, वह हमारी है ही नहीं। सारी भावनाएँ इसी प्रकार कैमिकल्स के द्वारा संचालित हो रही हैं।

जब आपको भय लगता है तब आपके भीतर एड्रीनेलिन नाम का एक कैमिकल है, वह छूट जाता है; अत्यल्प मात्रा में। वह मात्रा इतनी छोटी है, माइक्रोग्राम्स में। एक किलो का हजारवां हिस्सा एक ग्राम होता है। एक ग्राम का हजारवां हिस्सा एक मिलिग्राम होता है। मिलिग्राम का और हजारवां हिस्सा माइक्रोग्राम होता है। उसका भी हजारवां हिस्सा...इतनी अल्पमात्रा में एड्रीनेलिन ग्रन्थि से रसायन छूट जाता है और हम भयभीत हो जाते हैं। हृदय की धड़कन तेज हो जाती, मांसपेशियाँ काँपने लगतीं, हाथ-पैर थरथराने लगते हैं। सांस तेज हो जाती, ब्लड प्रेशर बढ़ जाता, पसीना छूट जाता है। हम सोच रहे हैं, यह हमारी भावना है। इसी प्रकार सारी भावनाएं रसायनों के प्राकृतिक खेल हैं।

वैज्ञानिकों ने खोजबीन की है आंतरिक रसायनों की—न्यूरोट्रांसमीटर्स की, जिनके बिना भावनाएं पैदा नहीं हो सकतीं। अब बाहर से भी इन्हें आयोजित

किया जा सकता है। एक क्रोधी आदमी का क्रोध समाप्त किया जा सकता है। उसके शरीर से उस हारमोन्स की गलैन्ड निकाल ली जाए जहाँ से क्रोध पैदा होता है फिर वह कभी गुस्सा नहीं कर पायेगा। लेकिन याद रखना वह कोई स्वतंत्रता नहीं होगी। यह अभी एक तरह के कैमिकल का गुलाम हैं, तब दूसरे प्रकार के कैमिकल अपना असर दिखा रहे होंगे। एक इंजेक्शन उसे लगाया जा सकता है जो क्रोध वाले हारमोन को खत्म कर दे, या सैक्स वाले हारमोन को खत्म कर दे; पर इससे ब्रह्मचर्य घटित नहीं होगा। इससे मात्र नपुंसकता घटेगी जो एक नए प्रकार की नई गुलामी होगी। यह कोई स्वतंत्रता नहीं होगी।

स्वतंत्रता तो तब होती जब भावनाएं अपनी जगह मौजूद होतीं और हमारी आत्मा उनकी मालिक हो जाती। क्रोध की संभावनाएं मौजूद रहतीं और फिर भी चेतना हमारी क्रोध से प्रभावित न होती; तब हम वाकई स्वतंत्र कहलाते।

४. अहंकार—बंधनों का नाम

इन तीन प्रकार की गुलामियों से जब चेतना मुक्त होती है तो संक्षेप में एक शब्द में उसे नाम दे सकते हैं—अहंकार से मुक्ति। क्योंकि इन तीनों का जोड़ तन, मन और भावनाओं का जोड़ ही मैं स्वयं का होना समझता हूँ। यह मेरा वास्तविक स्वरूप नहीं है। ज्ञानीजन कहते हैं तुम आत्मा हो; तुम परमात्मा स्वरूप हो—तत्वमसि! शरीर, मन और हृदय; ये तुम्हारे ऊपरी कवच हैं, वस्त्रों की भांति। ये तुम्हारा वास्तविक स्वरूप नहीं। इन्हें बदला जा सकता है। ये निरंतर परिवर्तित होते ही रहते हैं। कभी एक विचार तो कभी दूसरा हावी हो जाता है। कहीं प्रेम तो कहीं घृणा आविष्ट कर लेती है। तुम कौन हो? यह या वह विचार, यह या वह भाव? तुम सबके साक्षी हो।

आने-जाने वाले काले या श्वेत बादल नहीं, तुम शाश्वत आकाश हो। अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानो; अपनी द्रष्टा आत्मा को जानो।

इस अहंकार से मुक्ति कैसे हो? संक्षेप में कह रहा हूँ क्योंकि वह गहरी साधना की बात है। अभी तो मैं सिर्फ इसलिए यहाँ आया हूँ कि आपको गुलामी से परिचित करा सकूँ। आपके भीतर एक तड़प पैदा हो, एक पुकार पैदा हो। आपको अपना पाश, बंधन, अपना पशुत्व पहचान आए फिर आप जब खोजने लगेंगे कि कैसे इससे मुक्त हों? वह बात तो नम्बर दो पर आती है। उसका उपाय है ध्यान, समाधि। उस सम्बन्ध में अभी कुछ नहीं कहूँगा, क्योंकि पहले तड़प पैदा हो, पुकार तो जन्मे! अन्यथा उस तोते की तरह आप

भी फिर आकर पिंजड़े में बैठ जायेंगे। मैं आपको जबरदस्ती कैद से बाहर नहीं निकालूँगा, फ्रांस के क्रांतिकारियों वाली भूल नहीं करूँगा।

हथकड़ी पसन्द हैं आपको; जबरदस्ती छीनने की कोशिश करूँगा तो आप मुझे शत्रु जैसा देखेंगे। आपके भीतर से ही प्यास जागे तो कुछ हो सकता है। आपके सहयोग बिना कुछ भी संभव नहीं। बस इतना बताकर जा रहा हूँ कि उपाय हैं; स्वतंत्रता सम्भव है। किसी बुद्ध ने, महावीर ने पाई है वह स्वतंत्रता; किसी कबीर, रैदास, दादू, नानक और मीरा ने प्राप्त की है। किसी ओशो ने परम मुक्ति उपलब्ध की है; आप भी हासिल कर सकते हैं। जैसे बीज में वृक्ष की, फूल की सम्भावना छिपी रहती है ठीक वैसे ही सबके भीतर मोक्ष का सुमन खिलने को आतुर है, किंतु मेहनत से भूमि तैयार करनी होगी, साधना का जल सिंचन करना होगा। श्रम, साहस, अपने ही अतीत से बगावत की हिम्मत करनी होगी और फिर धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा भी।

हथकड़ियां तोड़ने में सबसे बड़ी बाधा है असुरक्षा का भय।

बरसों से पिंजड़े में बंद वह तोता क्यों लौट आया? अगर तेज बरसात आती है तो मालिक पिंजड़े को उठाकर भीतर रख लेता है, भूख लगती है तो मालिक दाना देता है। प्यास लगती है तो पानी का इंतजाम करता है; दूसरे पक्षी; बाज, बिल्ली, कुत्ते उस पर हमला नहीं कर सकते। वह सींकचे के अन्दर परतंत्र लेकिन सुरक्षित है, इसीलिए पिंजड़े के बाहर नहीं रहना चाहता।

बाहर सब प्रकार की असुरक्षाएं हैं; बरसात आएगी, बिजली कड़केगी, कभी इतनी तेज आंधी चलेगी कि तोते से उड़ते न बनेगा, तूफानी हवाएं पंखों को नष्ट कर सकती हैं। ओले गिरेंगे तो निरीह कमजोर तोता बहुत अकेला पड़ जायेगा। भूख लगेगी कहाँ भोजन ढूंढ़ता फिरेगा, कभी मिलेगा, कभी नहीं भी मिलेगा। जान असुरक्षित रहेगी... कहीं जमीन या पेड़ पर चढ़ी बिल्ली ताक लगाये बैठी है हमला करने के लिए, कहीं आकाश में बाज पक्षी पीछा करेगा; कहीं शिकारी रास्ता देख रहा है। कई प्रकार की चुनौतियां सामने हैं।

खुले, स्वतंत्र आकाश में रहना आसान नहीं है।

केवल वही आत्माएँ जो असुरक्षा में जीने और मृत्यु तक को वरण करने हेतु तैयार हैं, उन्हें ही परम मुक्ति का अनुभव हो सकता है। जिनके मन में सुरक्षा का गहन मोह और जीने का अति-आकर्षण है, जो अपनी स्वतंत्रता बेच कर सुरक्षा खरीद लेते हैं, वे लोग कभी मोक्ष का स्वाद नहीं जान सकते।

९. परस्पर-तंत्रता की समझ

अंतिम बात याद रखें, बाहरी जगत में हम केवल इंटर-डिपेंडेंट ही हो सकते हैं, न तो कोई व्यक्ति हंड्रेड परसैन्ट डिपेंडेंट होता है और न परफैक्टली इनडिपेंडेंट होता है। दोनों शब्द गलत हैं; दुनिया में एक इंन्टरडिपेंडैन्स है। हम सौ प्रतिशत स्वतंत्र या पूर्णत: परतंत्र नहीं, वरन परस्पर-तंत्र हैं, एक-दूसरे पर निर्भर हैं। सामाजिक या पारिवारिक रूप से, आर्थिक अथवा राजनीतिक रूप से, एक प्रकार की सूक्ष्म गुलामी सदा थी, है व रहेगी। कोई विशेष फर्क नहीं पड़ता... पहले गोरी चमड़ी वाले राज्य करते थे अब वही कार्य काली चमड़ी वाले कर रहे हैं। हम अपने ही लोगों के गुलाम हैं। और उसी बुरी तरह से गुलाम हैं, जैसे अंग्रेजों के गुलाम थे। चमड़ी का रंग बदल गया, गुलाम बनाने वाले लोगों की मानसिकता वही की वही है। नाम बदल गये हैं उनके। पहले वे पराए थे, परायों से तो लड़ भी लो; अब अपने लोगों से लड़ना और मुश्किल है। किसी न किसी तल पर गुलामी बनी रहेगी, हाँ, मात्रा में कम ज्यादा हो सकती है।

समाज में हम कभी पूरे स्वतंत्र नहीं हो सकते, परिवार में मजबूरी है; पति-पत्नी हों कि पिता-पुत्र, भाई-बहिन हों कि आस-पड़ोस के लोग अथवा ऑफिस के बॉस और सहकर्मी। हम सब जगह इंटरडिपेंडेंट हैं; हंड्रेड परसैन्ट फ्री नहीं हो सकते कभी, वह सम्भव नहीं है। बाहर संसार के तल पर हंड्रेड परसैन्ट फ्रीडम असम्भव है; कुछ न कुछ मात्रा में दासता रहेगी ही। पूर्ण स्वतंत्रता सिर्फ एक जगह सम्भव है, वह है–'एट द लैवल ऑफ कान्शसनैस।'

शारीरिक, मानसिक और हार्दिक; इन तीन गुलामियों से हम मुक्त हो जाएं तब हमारी चेतना पूर्णत: स्वतंत्र हो जाती है। उस स्वतंत्र चैतन्य को महावीर मोक्ष कहते हैं, बुद्ध निर्वाण कहते हैं, उपनिषद के ऋषि उस अवस्था को कैवल्य नाम देते हैं, ईसा मसीह उसे प्रभु का राज्य पुकारते हैं। नाम कुछ भी दो; वही स्थिति आध्यात्मिक जीवन का असली लक्ष्य है।

उसकी उपलब्धि में व्यवधान क्या हैं, उन्हें हम भली-भाँति समझ गए। वे सारी की सारी बाधाएँ हमने खुद खड़ी की हैं। वह कुएँ का मेंढक अपनी मर्जी से कुएँ में बंद है, और तोता अपनी मर्जी से पिंजड़े में आकर बैठता है। जब तक यह पिंजड़ा उसे तकलीफ न देने लगे, वह बाहर नहीं निकलेगा।

मैं आपको वही तकलीफ देने आया हूँ; आपके प्राणों को झकझोरना चाहता हूँ। अगर चाहते हैं वास्तविक स्वतंत्रता, तो आत्मा के तल पर वह पाई जा

सकती है। और वह स्वतंत्रता स्वयं से स्वतंत्रता है; फ्रीडम फ्रॉम दी सैल्फ, फ्रीडम फ्रॉम द इगो। बाहर की स्वतंत्रताएं दूसरों से होती हैं और वे कभी भी पूरी नहीं हो सकतीं। केवल आन्तरिक स्वतंत्रता ही पूर्ण स्वतंत्रता हो सकती है। तो ऊपरी स्वतंत्रता को ही सब कुछ मत समझ लेना वर्ना भीतर हम परतंत्र बने रहेंगे। ऊपर-ऊपर झूठी खुशहाली आ जाती है, भीतर की कंगाली मिटती नहीं। एक गीत सुनाकर अपनी बात मैं समाप्त करता हूँ–

ऊपर ऊपर खुशहाल जिंदगी, भीतर बिल्कुल कंगाल जिंदगी।
अधरों पर मुस्कान, हृदय में घाव, झूठ का जाल जिंदगी।
बचपन, यौवन और बुढ़ापा, तीन ऋतु की साल जिंदगी।
झूले से लेकर अर्थी तक, भेड़ों जैसी चाल जिंदगी ।
कहीं पे हमला, कहीं सुरक्षा, तीर बनी कभी ढाल जिंदगी।
मकड़ी फंसी अपने ही जाल में, वाह गजब जंजाल जिंदगी।

वाकई गजब का जंजाल है। मकड़ी ने जाला दूसरों के लिए बुना था और खुद ही उसमें फंस गई है। हम खुद की बनाई बेड़ियों में बंधे हैं। चैतन्य रूपी तोते का कोई मालिक नहीं है, पिंजड़ा उसने स्वयं निर्मित किया है।

भाग-दौड़, स्पर्धा-हिंसा, झगड़ा झांसा बवाल जिंदगी।
बहुत रफू-पैबंद लगाए, रही मगर फटे हाल जिंदगी।
बाल की खाल उधेड़ी फिर भी उत्तर रहित सवाल जिंदगी।
आंधी-तूफां-भूचाल जिंदगी, अंत काल का गाल जिंदगी।
अभी जली कि अभी बुझी बस, क्षणभंगुर मशाल जिंदगी।
बड़ी हाल-बेहाल जिंदगी, आंसू भरा रूमाल जिंदगी।

10. स्वर्णिम चुनौती और आमंत्रण भी

भीतर का अपना कंगलापन दिखाई दे तो फिर कुछ हो सकता है; अपनी परतंत्रता के प्रति जागें। मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ और स्मरण रखें एक-एक व्यक्ति के आजाद होने से संभव है कभी यह देश और फिर सारी दुनिया भी आंतरिक आजादी का उत्सव मना सके। राजनीतिक क्रांतिकारी समाज को परिवर्तित करने की बात करते हैं, ओशो जैसे धर्म-पुरुष व्यक्तिगत विद्रोह के द्वारा आत्म-रूपांतरण की कला सिखाते हैं। अत: स्वयं की जिम्मेदारी को कम न समझें।

आओ, यह प्यारा सा गीत गाकर यहाँ से उठते हैं, काश वह दिन शीघ्र आए जब यह स्वप्निल गीत वास्तविकता में परिणत हो जाए-

भारत में कर्मयोग का विहान देख लो।
जागे हुए एक देश का अभिमान देख लो। भारत में...
हर घर में सुख व शांति का हम दीप जला लें;
हर पथ को स्वच्छ कर दें, फूलों से सजा दें।
भारत के सर उठाने का अरमान देख लो। भारत में...
दिन-रात कारखानों में चलती मशीन हैं;
बागों से सजी वादियां कितनी हसीन हैं।
कर्मठ हुए मजदूर और किसान देख लो। भारत में...
गंगा की कसम, दोस्तों गांधी की कसम है;
भारत को स्वर्ग फिर से बनाने की कसम है।
झुक रहा है हिमालय पर आसमान देख लो। भारत में...
भारत का अर्थ, विश्व एक, मनुज एक हो;
भारत का अर्थ, धर्म व विज्ञान एक हो।
ओशो की धर्म दृष्टि का जहान देख लो। भारत में...

अंत में सभी मित्रों को धन्यवाद देता हूं। आपने मेरी चोट पहुंचाने वाली बातों को भी इतने प्रेम और लगन से सुना। आत्मिक स्वाधीनता हेतु चुनौती स्वीकारें। ओशो की धर्म दृष्टि के अनुसार ध्यान-साधना के हथौड़े से कर्मबंध की जंजीरों को, संस्कारों की बेड़ियों को तोड़ने का आह्वान स्वीकारें।

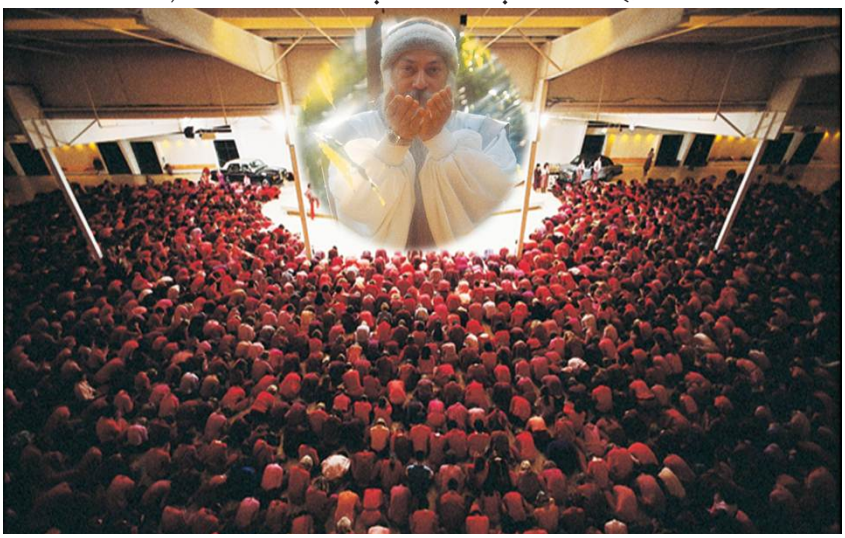

प्रवचन-7

आंतरिक शून्य उजागर हो!

ओशो ध्यान समाधि केन्द्र, भैरहवा, नेपाल, में अक्टूबर 2005 को स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती जी द्वारा दिया उद्घाटन प्रवचन

एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी बात शुरु करना चाहूँगा। एक सौदागर था, पुरानी कहानी है; उस समय पानी के जहाज चला करते थे, समुद्रों में। वह सौदागर दूर-दूर विदेशों में जाता था, समान बेचने, खरीदने के लिए; बड़ा व्यापारी था, बहुत धन उसने कमाया। उसके मित्रों ने उसको कहा कि आप अक्सर नाव में यात्रा करते हैं, समुद्रों में, नदियों में, नाव पर अपना सामान लेकर जाते हैं; अच्छा हो आप तैरना सीख लें, आपको तैरना नहीं आता। कभी कोई इमरजेन्सी हो जाए, कोई संकटकालीन स्थिति हो जाए, नाव पलट जाए; कम से कम तैरना तो आना ही चाहिए। उस धनी आदमी ने पूछा कि तैरना सीखने में कितना समय लगेगा? मित्रों ने कहा, कोई ज्यादा समय नहीं लगता, ज्यादा से ज्यादा आठ दस दिन; बस इतना पर्याप्त होगा।

तैरना कोई बड़ी बात नहीं है—धनी आदमी ने कहा—किंतु आठ-दस दिन मेरे लिए बहुत बड़ी बात है। एक-एक दिन में लाखों रुपये कमाता हूँ, आठ-दस दिन मैं तैरना सीखने में बर्बाद करूं; आठ-दस लाख रुपये का नुकसान हो जाएगा। तुम जानते नहीं मेरा व्यापार; लाख रुपये रोज की कमाई है मेरी। नहीं, तैरना तो मैं नहीं सीखूंगा; इतना समय मैं खर्च नहीं कर सकता।

मित्रों ने कहा तो फिर ऐसा करो, कम से कम अपनी नाव में दो खाली डिब्बे, दो पीपे रख लिया करो। कभी नाव डूब जाए तो वह खाली कनस्तर पकड़कर तुम तो तैर जाओगे, कम-से-कम जान बच जाएगी।

उस व्यापारी ने कहा—यह बात ठीक है, यह तो किया जा सकता है; इसमें कोई

नुकसान नहीं। उसने अपनी नाव में दो खाली पीपे रख लिए। फिर कई साल बीत गए। आवागमन चलता रहा, यात्राएं चलती रहीं। कोई जरूरत उन पीपों की कभी पड़ी नहीं। एक दिन उसने सोचा ये फालतू पड़े रहते हैं, कोई काम तो आए नहीं, क्यों न इनका कुछ उपयोग कर लिया जाए। तो जब वह विदेश यात्रा करता था और माल खरीद-बेच के वापिस लौटता था तो काफी सोना, चाँदी, हीरे-जवाहरात कमा कर लाता था। उसने सोचा इन डिब्बों का उपयोग किया जाए तो सोना, चाँदी, हीरे-जवाहरात उसने उन पीपों में भरने शुरु कर दिये। वह भूल ही गया कि इनको किस उद्देश्य से रखा था; कोई जरूरत कभी आई नहीं। वह उनका कन्टेनर की तरह उपयोग करने लगा। फिर एक दिन वही हुआ, जो होना ही था...

तेज आंधी-तूफान, ऊँची-ऊँची लहरें; बीच सागर में नैय्या डांवाडोल होने लगी। नाव डूबने लगी तब उसे ख्याल आया कि दोस्तों ने कहा था कि वे पीपे पकड़कर तैर जाना, डूब नहीं पाओगे। उसने देखा पीपे तो भरे हुए हैं; सोना भरा हुआ था, हीरों से लबालब थे। सोचने लगा- यह जिन्दगी भर की कमाई, इनको कैसे फैंक दूँ? बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई, नाव डूब रही थी। उसने सोचा कि भरे हुए पीपे लेकर ही चला जाऊं मैं। सोने और हीरे से भरे हुए पीपे लेकर वह पानी में गया। नाव तो डूबी ही, संग में वह अमीर व्यापारी भी डूब गया।

जिन्दगी भर की कमाई छोड़ न सका। अन्तिम समय में जिन्दगी भर की कमाई जीवन को गंवाने वाली सिद्ध हुई।

हम सब भी जिन्दगी भर में जो कमाते हैं, एक दिन हम पाते हैं कि उसी कमाई ने हमको डुबा दिया। रोज हम डूबते हुए लोगों को देखते हैं।

क्या आप जानते हैं? छः अरब की इस दुनिया में ढाई लाख आदमी प्रतिदिन मरते हैं। यदि नेचुरल कैलेमटीज़, युद्ध और आतंकवादी घटनाएं न हों तो ढाई लाख आदमी प्रतिदिन मरते हैं। ढाई लाख लोगों की नाव डूब जाती है और उनका जिन्दगी भर का किया-धरा, बड़ी मेहनत से कमाया हुआ सब व्यर्थ पड़ा रह जाता है। जिसके लिए पूरी जिन्दगी उन्होंने गंवा दी। अन्त में पता चलता है कि वह किसी भी काम न आया फिर भी हम जागते नहीं, चेतते नहीं। ढाई लाख आदमी रोज विदा हो जाते हैं, इस धरती से और हम ऐसे जीए चले जाते हैं कि जैसे हमको यहाँ सदा-सदा रहना है। क्षुद्र बातों के लिए लड़ते-झगड़ते, कलह करते, दुख, पीड़ा, परेशानी, चिन्ता और संताप में हम अपनी जिन्दगी को गंवाते हैं और जो हम इकट्ठा करते हैं, वही हमें डुबाने वाला सिद्ध होता है।

धन्यभागी हैं वे लोग जिनके जीवन में कुछ खालीपन, कुछ शून्यता होती

है। जिन्होंने हीरे-जवाहरातों से अथवा पद-प्रतिष्ठा से खुद को भर लिया है, घर-गृहस्थी से भर लिया है, धन के अंबार लगा लिए, किसी ने ऊँचे पद पा लिए, किसी ने बड़ा ज्ञान हासिल कर लिया, शास्त्र कंठस्थ कर लिए, गीता और रामायण याद हैं; अन्त में वे पाएंगे- कुछ भी काम न आया। सौभाग्यशाली है वह व्यक्ति जो अपने भीतर शून्यता को पहचान लेता है।

ज़रा सोचो उस व्यापारी ने अगर उन पीपों को खाली रखा होता तो वे खाली पीपे उसे बचा लेते; भरे हुए पीपों ने उसे डुबा दिया। लेकिन हमें यह बात कभी ख्याल ही नहीं आती कि हम खाली हों। हम तो चौबीस घण्टे में घड़ी भर को भी खाली नहीं होते। दिन भर ऑक्यूपाइड, कुछ ना कुछ करते ही रहते हैं; एक मिनट भी खाली नहीं बैठते।

कोई खाली बैठे तो हमें लगता है कि वह यह समय फालतू गंवा रहा है। अरे! समय का कुछ उपयोग करो, कुछ करो, क्यों फिजूल टाईम खराब कर रहे हो? मैं आपसे कहना चाहता हूँ जिस व्यक्ति ने चौबीस घन्टे में से एक घन्टा भी निकाल लिया, खाली चुपचाप बैठने के लिए, भीतर शून्यता निर्मित करने के लिए, वही बचेगा। विचारों से खाली हो जाएं, कर्मों से, भावनाओं से खाली हो जाएं; भीतर कुछ भी न बचे। एक निपट शून्य, उस शून्य में एक चेतना भर रह जाएगी बस- कांशसनेस, अवेयरनेस, जागरूकता; इसी प्रक्रिया का नाम ध्यान है, समाधि है। भीतर बस एक चेतना मात्र रह जाए, एक द्रष्टा भाव, एक साक्षी भाव और सब भांति खाली; निर्विचार, निर्भाव, निष्कर्म। थोड़ी देर के लिए हम समग्रतः निष्क्रिय होना सीख जाएं, कुछ भी न करें।

याद रखना ध्यान कोई क्रिया नहीं है। ध्यान के नाम पर लोग मूर्ति पूजा करते हैं, पूजा-पाठ करते हैं, व्रत-उपवास करते हैं, गंगा स्नान करते हैं, तीर्थों की यात्रा

करते हैं, मंदिर-मस्जिद, चर्चों में जाते हैं, प्रार्थनाएं करते हैं; न जाने क्या-क्या करते है? वे सब भी व्यस्तताएं हैं, वे सब भी अपने-आप को भरने के उपाय हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप अश्लील किताब पढ़कर समय खर्च कर रहे हैं कि धर्म ग्रन्थ पढ़कर समय खर्च कर रहे हैं। किताब, किताब है; वह मन में आपके विचारों को भर रही है और कुछ भी नहीं।

इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि एक छोटा बच्चा खेल-खिलौनों से खेल रहा है, गुड्डे-गुड़ियों से; और एक बूढ़ा आदमी राम की और कृष्ण की मूर्ति बनाकर उनकी पूजा कर रहा है। ये बुढ़ापे के खेल-खिलौने हैं, लेकिन वे भी गुड्डे-गुड़िया से ज्यादा नहीं। हो सकता है आपकी मूर्ति बड़ी महंगी हो, कीमती पत्थर की हो, संगमरमर या सोने चाँदी की हो। छोटे बच्चे के खिलौने सस्ते हैं, कागज के बने हैं कि कपड़े या मिट्टी के बने हैं। आपकी मूर्ति हो सकती हो, बड़ी मंहगी हो, बड़े कलाकारों ने बनाई हो लेकिन खिलौना ही है और इसके साथ आप जो समय गंवा रहे हैं, वह बिल्कुल व्यर्थ गंवा रहे हैं। एक खेल से ज्यादा वह है नहीं; जब मृत्यु द्वार पर दस्तक देगी, यह खेल काम नहीं आने वाला। आप अचानक पाओगे कि आपके पूजा-पाठ काम न आए. आपके शास्त्र और ग्रन्थों का अध्ययन काम न आया; आपका गंगा स्नान और तीर्थ यात्रा कुछ काम न आईं। न तो संसार का धन काम आता, न घर-गृहस्थी काम आती, न मकान काम आता, न पद-प्रतिष्ठा काम आती, न सुयश-नाम किसी काम आता। जब यमराज द्वार पर खड़े होंगे तो अचानक आप पाओगे कि आपने बिल्कुल व्यर्थ अपने जीवन को गंवाया है।

सिकन्दर की कहानी सुनी होगी; विश्व विजेता हुआ। उस समय जितनी दुनिया ज्ञात थी उसने करीब-करीब पूरी जीत ली थी। जब उसकी मृत्यु हुई तो उसने अपने वजीरों से कहा कि जब मेरी अर्थी मरघट पर ले जाओ; मेरे दोनों हाथ बाहर लटके रहने देना।

उसके मंत्रियों ने पूछा कि ऐसा तो रिवाज़ नहीं है, यह आप क्यों कह रहे हो? सिकन्दर ने कहा ताकि दुनिया देख ले कि विश्व विजेता सिकन्दर भी हाली हाथ, एक भिखारी की तरह जा रहा है। मैं कुछ भी साथ ले जाने में सफल न हुआ, इतना खून-खराबा किया, इतने लोगों की जानें ली; कुछ काम न आया। मैं तो भिखारी की तरह जा रहा हूँ रोता, गिड़गिड़ाता, तड़पता। मेरे जीवन में कोई सन्तोष नहीं, कोई तृप्ति नहीं, कोई सेटिस्फैक्शन, कोई संतुष्टि नहीं है; मेरी जिन्दगी बेकार गई।

चाहे हम बाहर की दुनिया में कुछ कमाएं, चाहे हम धर्म के नाम पर जो क्रियाएं चल रही हैं, उनमें समय गंवाएं; मैं आपसे कहना चाहता हूँ, दोनों ही बिल्कुल व्यर्थ हैं। यहाँ लुम्बनी में भगवान बुद्ध का जन्म हुआ; उनकी कहानी तो आपको पता ही होगी। उन्तीस साल तक वह राजकुमार की तरह ऐश-अय्याशी में, धन-दौलत

में, पद-प्रतिष्ठा में जीए फिर वे संन्यस्त हो गए, छः साल तक उन्होंने घनघोर तपस्या की। जिस गुरु ने जो बताया, वही उन्होंने किया। कठिन से कठिन तपस्या उन्होंने की लेकिन फिर भी कुछ हासिल न हुआ।

छः साल बाद, एक दिन नदी में स्नान करते हुए शाम के समय, वे इतने कमजोर हो गए थे कि वे नदी से बाहर निकल नहीं पा रहे थे। पिछले तीन महीने से उन्होंने व्रत लिया था उपवास का, दिन में एक दाना चावल का खाते थे, बस। सूख कर शरीर हड्डी-हड्डी हो गया था, इतने कमजोर हो गए थे कि पानी में से बाहर निकलते नहीं बन रहा था। एक पेड़ की जड़ पकड़कर लटके हुए थे और वह नदी, निरंजना नदी जिसका नाम है; वह कोई बड़ी नदी नहीं है। नदी भी नहीं है, छोटा सा नाला है; पाँच साल का बच्चा भी उसे क्रॉस कर जायेगा।

गौतम बुद्ध उसमें से बाहर नहीं निकल पा रहे थे तब उन्हें अचानक ख्याल आया कि छः साल हो गए मुझे तपस्या करते; मैं सोचता था कि भवसागर पार हो जाऊंगा और यह छोटा सा नाला पार नहीं कर पा रहा। मैं भवसागर कैसे पार होऊंगा? अचानक एक नई सूझ उत्पन्न हुई, याद आया, पहले उन्तीस साल मैंने संसार में गंवाएं। सुरा और सुन्दरी में, धन-दौलत में, ऐश-अय्याशी में, लड़ाई-झगड़ा, युद्ध में और पिछले छः साल धर्म के नाम, अध्यात्म के नाम पर जो साधना मैंने की; उसमें भी व्यर्थ गंवाएं। वह भोग तो व्यर्थ था ही, यह त्याग के नाम पर जो मैंने किया यह भी बिल्कुल बेकार गया।

किसी प्रकार बामुश्किल नदी के बाहर निकले, पास में ही एक वृक्ष था उसके नीचे विश्राम करने बैठ गए। बड़े थक गए थे; बड़ी थकान महसूस हुई। सोचो ज़रा! जिसके छः साल बेकार गए हों, जिसे सार समझ में आ गया, सब साधनाएं करके

देख ली। शास्त्रों में जो-जो लिखा है, सब करके देख लिया, सारे योगाभ्यास कर लिए; कुछ हासिल नहीं हुआ। न परमात्मा से मिलना हुआ, न किसी मोक्ष का पता चला, न स्वर्ग के दर्शन हुए। सोचो उनकी थकावट कैसी रही होगी, उस शाम।

सुजाता नाम की कोई महिला गाँव से आई, एक कटोरा खीर का उस वृक्ष के नीचे रख गई। उसने कोई मनौती मानी थी, उस वृक्ष के देवता से कि मेरी यह इच्छा पूरी हो जाए तो मैं एक कटोरा खीर चढ़ाऊंगी। संयोग से आज बुद्ध पेड़ के नीचे बैठे थे। उन्हें तो भूख लगी थी, तीन महीने से उपवास जो कर रहे थे बेचारे। सामने खीर का कटोरा देखकर, उन्होंने खीर का कटोरा उठाया और खीर खा ली। आज उपवास भी तोड़ दिया। धार्मिक साधना छोड़ दी। आज उन्होंने त्याग का भी त्याग कर दिया। एक दिन संसार का त्याग किया था छः साल पहले, आज त्याग का भी त्याग कर दिया। भूख लगी थी, सामने खीर रखी थी; उन्होंने भरपेट खीर खाई फिर उन्हें नींद आने लगी। वे उसी वृक्ष के नीचे सो गए। सोते-सोते संसार की व्यर्थता और धर्म की व्यर्थता, दोनों उन्हें समझ में आ गई थीं। भोग और त्याग दोनों निरर्थक हैं, यूज़लेस। कोई सार नहीं है, किसी बात में; उन्हें इसकी सूझ-बूझ जागी।

ज़रा सोचो, उस रात उनकी नींद कैसी रही होगी? आज कोई कामना न बची, आज मन में कोई वासना न थी। छः साल पहले संसार की वासनाएं थी कि साम्राज्य बड़ा हो जाए, और धन कमा लूँ, सेना सशक्त हो जाए; और सुन्दरियों को इकट्ठा कर लूँ अपने हरम में। यह हो जाए, वह हो जाए, मेरी यश-पताका दूर-दूर तक फहराए। एक राजकुमार की जो वासनाएं होती हैं; पहले वे वासनाएं थीं।

पिछले छः साल में, वासना का ऑब्जैक्ट बदल गया था। वासना खत्म नहीं हुई थी, वासना का विषय बदल गया था। अब मोक्ष चाहिए, स्वर्ग चाहिए, ईश्वर के दर्शन चाहिए, निर्वाण प्राप्त करना है, परम ज्ञान पाना है; ऐसी वासनाएं जन्म गई थीं। लेकिन वासना तो थी, इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम क्या पाना चाहते हो?

कुछ पाना चाहते हो उससे तनाव उत्पन्न होता है, उससे अशान्ति उत्पन्न होती है। शांति पैदा होती है स्वयं के स्वीकार से कि मैं जो हूँ, जैसा हूँ; जो मेरे पास है उससे मैं राजी हूँ, मैं सन्तुष्ट हूँ; इससे शांति पैदा होती है। और अशांति पैदा होती है जो मेरे पास नहीं है, उसको पाने की कोशिश, जो मैं नहीं हूँ, वह बनने की कोशिश से अशांति और तनाव उत्पन्न होता है। तो उन्तीस साल तक एक प्रकार का तनाव था संसार का और छः साल से धार्मिक तनाव था। किंतु तनाव सदा था।

तुम्हें ऐश्वर्य पाना है कि ईश्वर पाना है, इससे क्या फर्क पड़ता है! दोनों के लिए तनावग्रस्त होना पड़ेगा, चित अशांत और बेचैन होगा। उस रात कोई तनाव

शेष न बचा क्योंकि अब कुछ पाने को ही न बचा। संसार भी व्यर्थ, धर्म भी व्यर्थ; अब कुछ नहीं पाना है। बिल्कुल निष्कामना, निर्वासना में उनकी नींद लगी। आज रात को सपने भी नहीं आ सकते क्योंकि सपने तो अधूरी कामनाओं के आते हैं। जो हम दिन में पूरी नहीं कर पाए, वह हम रात को सपने में पूरी कर लेते हैं।

समझो एक गरीब आदमी है, उसको भोजन नहीं मिला; भूखा पेट है। रात वह सपने में देखेगा कि बड़ी पार्टी हो रही है और वह स्वादिष्ट व्यंजन खा रहा है। राजनेता सपना देखता है कि वह चुनाव जीत गया, लोग नारे लगा रहे हैं- जिन्दाबाद! वह अकड़कर प्रधानमन्त्री की कुर्सी पर बैठा है। जो हमारे मन में वासना होती है, रात उसी के तो सपने आते हैं। छोटे बच्चे हैं, स्कूल में पढ़ते हैं, वे सपना देखते हैं कि स्कूल का रिजल्ट निकल आया; फर्स्ट डिवीज़न पास हो गए। उनकी वासना अभी वही है; स्कूल में प्रथम कैसे आ जाएं? खेल में ईनाम हमें कैसे मिलें? अधूरी कामनाएं सपने बन जाती हैं।

उस रात बुद्ध को कोई सपना न आया, बड़ी अद्‌भुत नींद लगी। बड़ी गहरी नींद लगी क्योंकि उनकी कोई कामना ही शेष नहीं थी। इसके पहले ईश्वर के सपने देखते थे, स्वर्ग के सपने देखते थे, मोक्ष के सपने देखते थे; आज उनसे भी छुटकारा हो गया। न संसार का कोई सपना, न कोई धार्मिक सपना। बड़ी गहरी शांतिदायी नींद, कोई बेचैनी नहीं, कोई तनाव नहीं।

भोर में जब नींद खुली, सुबह का आखिरी तारा डूब रहा था; उस तारे को देखते-देखते बुद्ध के भीतर भी कुछ डूब गया। अहंकार, मन, वासना की अन्तिम छाया, वह भी डूब गई, सब विलीन हो गया; भीतर बिल्कुल शून्य हो गए। भीतर कुछ भी न बचा- कोई भाव नहीं, कोई विचार नहीं।

विचार किसका करोगे जब पाना ही नहीं है, कुछ होना ही नहीं है तो किस चीज की योजना बनाओगे। विचार तो हमारे इसलिए चलते हैं ना कि हमें भविष्य की कोई योजना बनानी है। विचार तो इसलिए चलते हैं कि हम पुराना अतीत याद करते हैं क्योंकि हम उसे बड़ा महत्वपूर्ण मानते हैं।

बुद्ध को कुछ याद भी नहीं आया क्योंकि अतीत सब कूड़ा-कचरा हो गया। वह उन्तीस साल भी बेकार, यह छः साल भी बेकार; किसकी याद करें? कुछ महत्वपूर्ण ही न बचा, न भविष्य बचा, न अतीत बचा; बस वर्तमान का शुद्ध क्षण। आँख खुली तो डूबता हुआ आखिरी तारा आकाश में, भोर की हल्की-हल्की रोशनी और बुद्ध के भीतर भी जैसे सूर्य उदय हो गया।

उस दिन उन्हें परम ज्ञान मिला- बुद्धत्व, एनलाइन्टनमेंट। उस दिन मोक्ष

की, निर्वाण की उपलब्धि हुई। ढाई हजार सालों से बौद्ध भिक्षु और विद्वान इस पर विवाद करते हैं कि बुद्ध को ज्ञान कैसे मिला; तपस्या के द्वारा या तपस्या छोड़कर। निश्चित रूप से तपस्या छोड़कर ही मिला, तपस्या करते हुए तो नहीं मिला था। साधना करते हुए तो कुछ नहीं मिला था; छोड़कर मिला था। कैसे?

जब भीतर बिल्कुल खाली हो गए थे, कोई कामना नहीं, कोई विचार नहीं, कोई वासना नहीं, कोई भावना नहीं। भीतर कुछ भी नहीं था; भीतर एक शून्य बचा और उस शून्य में परम सत्य अवतरित हो गया। पूर्ण उतर आया।

जिस परमात्मा की खोज में छः साल से परेशान थे और वह न मिला; जिस दिन खोज बन्द की उस दिन अचानक वह मिल गया। इसलिए मैं कहता हूँ, सौभाग्यशाली हैं वे जो शून्य होने को तैयार हैं; जो खाली होने को तैयार हैं। उस खाली होने की प्रक्रिया का नाम ही ध्यान है, समाधि है। ध्यान कोई क्रिया नहीं, समाधि कोई क्रिया नहीं जो की जा सके।

थोड़ी देर के लिए हम कुछ भी न करें, न शरीर से, न मन से, न हृदय से; न कोई कर्म, न कोई विचार, न कोई भाव। नो डूईंग, नो थिंकिंग, नो फीलिंग; जस्ट प्योर बीइंग। सिर्फ हमारा होना, शुद्ध होना। न शरीर कोई कर्म कर रहा, न मन विचार कर रहा, न कल्पना स्मृति में डोल रहा और न हृदय में कोई भावना... कुछ भी नहीं... और अचानक हम पाते हैं, वह शून्य बड़ा अद्‌भुत रहस्यमय है। उस शून्य में पूर्ण का अवतरण होता है, जिसे जन्मों-जन्मों से हम तलाश रहे थे, वह परमानन्द की अवस्था अचानक आ जाती है; वह हमारे करने से नहीं मिलती। सामान्यतः लोग सोचते हैं कि कर्म योग, भक्ति योग और ज्ञान योग; इनके द्वारा परमात्मा की प्राप्ति होती है।

मैं आपसे विनम्र निवेदन करता हूँ, किसी योग से परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती। कर्मयोगी शारीरिक क्रियाओं में व्यस्त है, ही इज ओक्यूपाइड फिजीकली। वह खाली नहीं है, उसने अपना पीपा भर लिया है। ज्ञानयोगी ने किताबें पढ़-पढ़कर, स्वाध्याय द्वारा विचारों से, सिद्धांतों से, फिलॉस्फी से, अपनी खोपड़ी को भर लिया है। उसका पीपा भी खाली नहीं है; किताबें भरी है उस में। उसकी नाव भी डूबेगी और वह जो भक्त है, उसने प्रार्थना से, पूजा से, पाठ से, कीर्तन से, भक्ति की भावनाओं से अपने बर्तन को भर लिया है; वह भी खाली नहीं है, भरा हुआ है।

कर्मयोगी, ज्ञानयोगी, भक्तियोगी, ये तीनों डूबेंगे; इनके पीपे भरे हुए हैं।

क्या हम खाली नहीं हो सकते थोड़ी देर के लिए? आपने जीवन को

भर-भरकर तो देख लिया, बहुत; कोई तसल्ली नहीं मिली, कोई सन्तोष नहीं मिला, कोई तृप्ति तो नहीं हुइ, क्या इसी भांति आगे भी जीते जाना है?

एक छोटी सी बात मैं कहता हूँ; मेरी बात मानने की ज़रूरत नहीं, विश्वास की आवश्यकता नहीं, प्रयोग करके देख लेना। मैं एक साइन्टीफिक एटिट्यूड से, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से आप से कह रहा हूँ, छोटा सा प्रयोग करके देख लेना, थोड़े से दिन के लिए; तीन महीने के लिए ही सही।

एक घंटा निकाल लो चौबीस घंटे में से, जब तुम कुछ भी न करो। शरीर थिर हो जाए, मन में कुछ हलन-चलन न हो, कोई विचार नहीं, कोई चिंतन-मनन नहीं, कोई स्मृति नहीं। न भविष्य की कोई योजना, न कोई सपना। न हृदय में कोई भावना; यहाँ तक कि प्रार्थना भी नहीं। कुछ भी नहीं, नथिंगनैस। उस एम्पटीनैस में, आप पायेंगे चमत्कार हो गया जिसके लिए हम तरस रहे थे और कर-कर के नहीं पा रहे थे। जो न ज्ञान से मिलता, न कर्म से, न भक्ति से; वह मिल जाता है, शून्य हो जाने से, खाली हो जाने से।

तो उस अमीर व्यापारी की तरह अपने पीपे को भरकर तो हम सबने देख ही लिया। वह तो हम सब जानते हैं, अपने अनुभव से कि वह सार्थक नहीं है; काम चलाऊ है। मैं मना नहीं कर रहा हूँ कि उसका उपयोग नहीं करना। संसार में धन जरूरी है, अवश्य धन कमा लेना। मकान जरूरी है रहने के लिए, कपड़े जरूरी हैं पहनने के लिए, भोजन चाहिए, पानी चाहिए, बीमारी में दवाई चाहिए। कमा लेना धन, उसका उपयोग कर लेना लेकिन इससे जीवन का कोई आनन्द नहीं मिलने वाला। आप यह मत सोच लेना कि बड़ा

मकान बन जाएगा या बड़ी कार आप खरीद लेंगे तो शांति उपलब्ध हो जायेगी। नहीं! वह जो अशांत आदमी बैलगाड़ी चला रहा था वही अशांत आदमी बड़ी कार चलायेगा। वही अशांत आदमी हवाई जहाज या अपोलो यान भी उड़ा सकता है, उसकी अशांति में फर्क नहीं पड़ेगा। वाहन बदल जाने से आप थोड़े ही बदल जाओगे!

एक आदमी छोटी झोपड़ी में रहकर परेशान है, वह सोचता है कि झोपड़ी के कारण परेशान है। फिर वह मेहनत करके बड़ा महल बना लेता है लेकिन इससे परेशानी खत्म नहीं होती; वह आदमी तो वही का वही है। वह पहले झोपड़ी में परेशान था अब वह महल में परेशान है। महल की अपनी परेशानियां हैं।

बाहर की परिस्थितियां बदल जाने से हमारे भीतर सुख-चैन नहीं आ जायेगा; भीतर ख्याल लेना होगा। हाँ! बाहर हम जो करेंगे उससे बाहर की चीजें बदल जायेंगी। बैलगाड़ी की जगह कार आ जायेगी, साधारण कुर्सी की जगह हो सकता है बड़ा आरामदायक सोफा हो जाए, झोपड़ी की जगह महल, सस्ते कपड़ों की जगह मंहगे वस्त्र, बीमारी की जगह बेहतर स्वास्थ्य की सुविधा उपलब्ध हो जाए, लम्बी उमर हो जाए, अच्छी शिक्षा हो जाए।

ये सब हो सकता है, बाहर; जरूर कर लेना। उसको मैं मना नहीं कर रहा हूँ लेकिन वह सब काम चलाऊ है। उससे जीवन की तृप्ति नहीं होने वाली, भीतर कुछ आनन्द नहीं घटने वाला; भीतर तो आप वही के वही रहोगे जैसे पहले थे। शिक्षित आदमी और अशिक्षित आदमी के तनावों में कोई फर्क थोड़े ही है। गाँव का गरीब और महानगर का अमीर... तुम क्या सोचते हो, उनके अन्तर्दशा में कोई अन्तर है; जरा भी अन्तर नहीं है।

जैसा वह ग्रामीण दुखी-परेशान है, वैसा ही राजधानी में रहने वाला अमीर आदमी पीड़ित है। जंगल में रहने वाले आदिवासी जैसी समस्याओं से ग्रस्त हैं, वैसी ही समस्याओं से महानगरों में रहने वाले ग्रस्त हैं। जैसा क्रोध उस आदिवासी को आता है, वैसा ही क्रोध पीएच० डी० और डी० लिट् की उपाधिधारी पढ़े-लिखे आदमी को आता है। क्रोध में कोई फर्क नहीं पड़ता बल्कि शायद हम और खतरनाक स्थिति में हैं। जब हम जंगल में रहते थे, आदिवासी थे, असभ्य थे तो हमारे पास लड़ने के जो साधन थे, वे भी छोटे-मोटे थे। गुस्सा आता मुझे, मैं क्या करता, किसी को पत्थर फैंक कर मारता या लकड़ी से चोट पहुँचाता और क्या करता? हथियार ही छोटे-मोटे थे।

आज हम बड़ी खतरनाक स्थिति में हैं, आज हमारे पास पत्थर की जगह न्यूक्लीयर वैपन्स हैं और डंडे की जगह मिसाइल्स हैं।

हिरोशिमा और नागासााकी में एक एटम बम गिरा और एक सेकिण्ड में लाखों आदमी इन दो शहरों में खत्म हो गए। हमारा क्रोध वैसा का वैसा है और हमारे हाथ की शक्ति बढ़ गई है; हम और भी खतरनाक सिचुएशन में हैं। हम कोई प्रेमपूर्ण आदमी नहीं बने, हम शांत और प्रफुल्लित और आनन्दित आदमी न बने; हम हैं, वैसे के वैसे- जंगली जानवर। ऊपर से हम बड़े शिक्षित हो गए, सभ्य हो गए, सुंदर मुखौटा ओढ़ लिया; ऐटिकेट्स और मैनर्स हमने सीख लिये। ऊपर से हम एक दिखावा और पाखण्ड कर रहे हैं कि हम एक भले आदमी हैं; हम सुसंस्कृत-सज्जन जरा भी नहीं हैं।

रोज हमारे भीतर का जानवर प्रकट हो जाता है। सारी दुनिया में देखो- आतंक, युद्ध, उग्रवाद, हत्या, बलात्कार, आगजनी, भेदभाव, पक्षपात, अन्याय। हम वही के वही जंगली जानवर हैं। हाँ डिग्रियां हैं हमारे पास, कोई एम० एस० सी० है, कोई पीएच० डी० है लेकिन हम वही खूंखार आदमी हैं। हम बड़े वैज्ञानिक हो गए हैं, हो सकता है नोबल प्राइज़ भी हमें मिल गया हो।

आप जानते हैं, नोबल प्राइज़ कैसे शुरु हुआ? नोबल नाम का एक वैज्ञानिक था, जिसने पहली बार विस्फोटक सामग्री बनाई; डायनामाइट का निर्माण किया। और उसकी विस्फोटक सामग्री की इतनी बिक्री हुई सारी दुनिया में, उसने इतना धन अर्जित किया कि उसके बैंक बैलेन्स के ब्याज मात्र से; याद रहे मूलधन से नहीं, केवल ब्याज से हर साल नोबल प्राइज़ बाँटे जाते हैं जो करोड़ों-करोड़ों रुपये के हैं। और उस आदमी ने कमाया कैसे था? विस्फोटक सामग्री बेचकर। इस पैसे में करोड़ों लोगों का खून मिला है और मजे की बात है, शांति के लिए भी नोबल पुरस्कार मिलता है। हद हो गई, नोबल ने यह पैसा कैसे कमाया, जरा वह तो ख्याल करो। करोड़ों की लाशें बिछवाकर यह पैसा आया था और शांति तक के लिए नोबल पुरस्कार लोगों को बाँटा जा रहा है। हम कैसे विचित्र लोग हैं?

प्यारे मित्रो! मैं निवेदन करना चाहता हूँ, हमारी शिक्षा-दीक्षा, हमारा विज्ञान, हमारा विकास, बैंक बैलेंस, हमारे बड़े-बड़े मकान, हमारी राजधानियां, हमारा तथाकथित डेवेलपमेन्ट और सभ्यता सब ऊपर-ऊपर की बातें हैं।

कुछ वर्ष पूर्व काठमाण्डू के राजघराने में क्या हुआ? आप सब जानते हैं। यह राजघरानों की हालत है तो आम आदमी की हालत क्या है? कुछ फर्क

पड़ा क्या? यह सभ्यता, कोई सभ्यता है कि बस ऊपरी मुखौटा है, दिखावा, पाखण्ड है। हम भीतर से प्रेमपूर्ण न हुए, आनन्दित न हुए। हम अशांत, बेचैन, क्रोध से भरे हुए, ईर्ष्या-जलन से दग्ध, जली-भुनी हालत में हैं और हमसे जो भी होगा, वह गलत ही होगा, अशुभ ही होगा।

क्या हम एक बेहतर आदमी नहीं बन सकते? क्या मजबूरी है, हम ऐसे ही रहेंगे? वैज्ञानिक क्रान्ति हो गई दुनिया में, औद्योगिक क्रान्ति हो गई, इन्डस्ट्रियल रिवोल्यूशन हो गया, शिक्षा की क्रान्ति हो गई, अधिकांश लोग शिक्षित हो गए। सम्पन्नता आ गई, यातायात और कम्यूनिकेशन के साधन बढ़ गए; भांति-भांति से ऐसा लगता है कि हम बड़े सभ्य मनुष्य हो गए परंतु उसी अनुपात में हम अधिक खूंखार और हिंसक होते जा रहे हैं।

प्रथम विश्व युद्ध हुआ; कोई चार करोड़ लोग मारे गए। पन्द्रह बीस साल ना बीत पाए कि सैकिण्ड वर्ल्ड वार छिड़ गया, फिर छः करोड़ लोगों की हत्या हुई। इतनी हत्या तो कोई जंगली जानवर भी नहीं करता। जानवर भी मारते हैं किसी को तो भूखे होते हैं, तभी; मजबूरी है, लाचारी है, भूख में हिंसा करते हैं। आदमी ऐसा विचित्र जानवर है जो भरे पेट हिंसा करता है, बिना वजह, शौक से हिंसा करता है। अपनी ही जाति में हिंसा करता है।

अब तीसरे विश्व युद्ध की तैयारी चल रही है। और वह सेकिण्ड वर्ल्ड वार से बहुत ज्यादा खतरनाक होगा क्योंकि विज्ञान और विकसित हो गया, पिछले सत्तर-अस्सी साल में हम काफी ज्यादा सभ्य हो गए हैं, अब विनाश के इतने साधन हैं कि पूरी पृथ्वी ही नष्ट हो जाएगी। इतने विनाश के उपाय उपलब्ध हैं कि सारी मनुष्य जाति को एक हजार बार मारा जा सकता है।

यद्यपि आदमी बड़ा कमजोर है। बेचारा एक ही बार में मर जाता है लेकिन राजनीतिकों ने सोचा कि कोई भूल-चूक न हो जाए; वैज्ञानिक पक्का इन्तजाम करते हैं। हर आदमी को एक हजार बार भी मारना पड़े तो पूर्ण इन्तजाम है। यदि थर्ड वर्ल्ड वार होगा तो याद रखना, इसमें कोई हार-जीत होने वाली नहीं है क्योंकि कोई बचेगा ही नहीं; कोई नहीं बचने वाला। पशु-पक्षी भी नहीं बचेंगे, मछलियां भी नहीं बचेंगी, कीड़े-मकौड़े और मच्छर-मक्खी भी नहीं बचेंगे; जीवन मात्र नष्ट हो जाएगा।

क्या हम विकसित हुए हैं? या पहले से भी ज्यादा बुरी हालत में हैं। और यह सब कैसे हुआ? हमने अपने आप को खूब भरने की कोशिश की है। जितने ज्ञानी हम हैं आज, जितने शिक्षित हम हैं, इतना शिक्षित तो पहले कोई

दूसरा युग नहीं था। जितनी धन-दौलत हम लोगों के पास है, इतनी तो हमारे पूर्वजों के पास कभी नहीं थी। जितने अच्छे मकान और जितनी अच्छी गाड़ियां हमारे पास हैं; इतनी हमारे बाप-दादाओं के पास नहीं थी। लेकिन फिर भी कोई सन्तोष नहीं, तृप्ति नहीं, तसल्ली नहीं। हर आदमी जैसे भीतर आग में जल रहा है, कुछ कारण भी समझ में नहीं आता। अब करें तो क्या करें?

मैं अमेरिका में रहा हूँ, जापान में रहा हूँ और उन अमीर देशों की मानसिक एवं हार्दिक हालत भारत और नेपाल से भी बुरी है। जापान में जितने लोग आत्महत्या करते हैं, उतना दुनिया में कहीं नहीं करते और सुसाइडल रेट रोज-रोज बढ़ता चला जा रहा है। बड़ा अद्‌भुत भराव पैदा हुआ है कि आदमी आत्महत्या करने को मजबूर है! यह हमने कैसा विकास किया है कि आत्महत्या करने का फैशन चल पड़ा है?

सब है जिनके पास, उन्हें समझ में नहीं आता कि करें क्या जिंदगी का? अमेरिका में जितने लोग मानसिक रूप से डांवाडोल हो रहे हैं और मनोरोगों से पीड़ित हो रहे हैं आज; इतने दुनिया में कभी भी नहीं हुए थे। भारत और नेपाल में साइकैट्रिस्ट की गिनती बहुत कम है, बड़े शहरों में ही हैं; छोटे शहरों में तो मनो-रोग-विशेषज्ञों का नाम तक अधिकतर लोगों ने नहीं सुना है।

अमेरिका में सबसे ज्यादा मंहगा प्रोफेशन आज साइकैट्रिस्ट का है; मनोचिकित्सा का बड़ा व्यवसाय फैल गया। इतने मनोरोगी हो गए, हर चार आदमियों में से तीन आदमियों का दिमाग कुछ गड़गड़ है, बस पागलखाने की कगार पर खड़े हैं। यह हो क्या रहा है?

और याद रखना, आज जो जापान व अमेरिका में हो रहा है, कल वह भारत, नेपाल में भी होगा। हम भी उसी तरफ बढ़ रहे हैं, हम भी उनकी नकल कर रहे हैं। हमने अपने आप को खूब भरना चाहा और जिसे सोना-चाँदी, हीरा-जवाहरात समझा; वही हमारी नाव को डुबा रहा है। इस बात को खूब अच्छे से पहचान लो; जिसे हम कमाई समझ रहे हैं उसी में हमने जिंदगी गंवायी है और नष्ट की है।

एक छोटा सा प्रयोग करके देख लेना, चौबीस घण्टे में से एक घण्टा ऐसा निकाल लेना, जब तुम कुछ भी न करो। न अखबार पढ़ना, न टी. वी. देखना, न बाहर किसी से बातचीत करना, न भीतर खुद से वार्तालाप करना। हमारे मन में जो विचार चलते रहते हैं; हम अपने आप से ही बातचीत करते रहते हैं। एक तो डॉयलॉग है, जो दूसरे के साथ चलता है और एक आन्तरिक

संवाद, मोनोलॉग है; अपने आप से ही लगातार बोलते रहते हैं। और बड़े मजा है कि जो बातें हम अपने भीतर कह रहे हैं, वे बातें हमें पता ही हैं पहले से; उसमें नया कुछ हैं नहीं। वही की वही बातें चलती रहती है, निरंतर चलती रहती हैं। वही पुरानी स्मृतियां फिर-फिर उभर कर आती रहती हैं। किसलिए? क्या यह मोनोलॉग बन्द हो सकता है- थोड़ी देर को ही सही?

अगर एक मिनट के लिए भी भीतर का आन्तरिक वार्तालाप बन्द हो जाए; सिर्फ एक मिनट के लिए आप आन्तरिक मौन की अवस्था में डूब जाएं, मन बिल्कुल शून्य, खाली हो जाए तो उस एक मिनट में ही एक्सप्लोज़न होगा- चेतना का आन्तरिक विस्फोट और आप पाएंगे आपके भीतर परमानन्द उतर आया। जिसे हम परमात्मा कहते हैं, ईश्वर पुकारते हैं, मोक्ष कहते हैं, वह आपके भीतर उतर आया। उसे करने के लिए किन्हीं क्रियाओं की जरूरत नहीं; शान्त, चुप, मौन, जागरूक होने की जरूरत है, बस शून्य होने की जरूरत है।

बस इतनी सरल सी बात है। मगर मुश्किल है, हम भराव के इतने आदी हो गए हैं; दिन रात व्यस्त रहने के इतने आदी हो गए हैं कि हम एक मिनट के लिए भी खाली नहीं हो पाते। आप प्रयोग करेंगे तो आपको पता चलेगा कि कैसी मुसीबत में आप फंसे? वह आपका वाचाल मन एक मिनट तो छोड़ो पाँच सेकिण्ड के लिए भी चुप नहीं होगा। अड़तालीस मिनट में तो परम ज्ञान उपलब्ध हो जाता है, जो बुद्ध, महावीर, कबीर, ओशो को प्राप्त हुआ था। अगर भीतर चुप हो गये तो आप परम ज्ञानी हो जाओगे। किंतु कुछ सेकिण्ड भी रुकना मुश्किल है; वह अन्दर बकवास चलती ही रहती है, चलती ही रहती है, चलती ही रहती है। दिनभर विचारों के

रूप में, रात को सपनों के रूप में और उस बकवास में है क्या? जरा गौर करना तो आपको पता चलेगा कि एक प्रकार का पागलपन है।

एक दिन आप ऐसा करना दस मिनट के लिए, कमरा बन्द करके अकेले में, ताकि कोई आपको देखें न; जो भी आपके मन में आ रहा है, वह आप कागज़ पर लिखते जाओ, पूरी ईमानदारी से, ऑथैन्टीकली। किसी को दिखाना नहीं है–सिर्फ जांच के लिए दस मिनट का प्रयोग करना। जो भी आपके दिमाग में चल रहा हो उसको लिखते जाना, लिखते जाना। अधूरा वाक्य आए तो अधूरा; उसको फिर पूरा करने की कोशिश मत करना। जैसा आ रहा है बस वैसा लिखते जाना। दस मिनट में आप जो 2-3 पेज लिख लोगे; वह अपने पति को या अपनी पत्नी को, अपने घनिष्ठतम मित्र को भी दिखाने राजी नहीं होंगे कि मेरे दिमाग में यह चल रहा है।

आपको खुद ही लगेगा कि मैं पागल हूँ; यह मेरे दिमाग में चल रहा है? यह है कूड़ा-कबाड़ा! हमारी आन्तरिक अवस्था मन की करीब-करीब पागल जैसी है। पागल में और हममे बस इतना ही फर्क है कि पागल ने बोलना शुरु कर दिया जो उसके भीतर चल रहा है। अभी हम कुछ दबाए बैठे हैं, अपने भीतर; बोलते भर नहीं है, बस। ऊपर-ऊपर से हम एक सभ्य आदमी बने हुए हैं, भीतर से हम पागल हैं। बस दूसरे को पता नहीं चलने देते कि पागल हैं लेकिन कब तक छुपाओगे? वह कभी न कभी प्रकट हो जाता है। कभी क्रोध के क्षणों में प्रकट हो जाता है; जब आप गुस्से में आ जाते हो तब आप भूल-भाल जाते हो सारी सभ्यता। तब भीतरी जंगली जानवर बाहर प्रकट हो जाता है, तब पता चलता है कि हम ऐसा काम कर गए जो कोई विक्षिप्त ही कर सकता है। एक समझदार आदमी से उम्मीद नहीं है ऐसा काम करने की। अगर यह आपके भीतर नहीं चल रहे थे तो ये दुष्कर्म कैसे हो गए? इस भीतरी पागलपन से मुक्त होना है; शून्य करना है इस मन को।

उस शून्यता का नाम ही ध्यान और समाधि है।

मैं बहुत आनन्दित हूँ, आज यहाँ ओशो ध्यान समाधि केन्द्र का उद्घाटन करते हुए। आएं, इस शून्यता में डूबना सीखें, ध्यान की कला सीखें; बड़ी सरल है। मैं आपको कोई सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं कर रहा हूँ, मैं आपको कोई फिलासफी नहीं पकड़ा रहा हूँ बल्कि आपकी फिलासफी छीन रहा हूँ।

मैं कह रहा हूँ कि जो आपने सीखा है उसको भी थोड़ी देर के लिए छोड़ दो। सब धर्मग्रन्थों को और शास्त्रों को एकदम भूल जाओ। किसी प्रार्थना की जरूरत नहीं, कोई पूजा पाठ नहीं करना है, कोई आरती नहीं उतारनी है। न मैं आपको हयोग सिखा रहा हूँ, न आपको कुछ कवायदें-क्रियाएं करने को या उपवास साधने को कह रहा हूँ। बहुत हो गए व्रत-उपवास इत्यादि; वे सब बेकार की बातें है।

मैं तो बस इतना कह रहा हूँ, शून्य होना सीखो। एक ही बात सीखने जैसी है; शून्य होना और तुम पाओगे कि तुम भवसागर पार हो गए। तुम्हारी नाव नहीं डूबेगी, खाली पीपा तुम्हारे पास होगा। वह पीपा हमारी खोपड़ी है, कुछ और नहीं, यह दिमाग जरा खाली हो जाए! और कोई सोना-चाँदी उसमें भरा नहीं है; आप दस मिनट कागज पर लिखकर प्रयोग करके देख लेना। निपट पागलपन भरा है, कूड़ा-कचरा भरा है। एक बार वह स्पष्ट हो जाए तो फिर खाली होना भी बहुत आसान है। इस पागलपन को कौन अपने भीतर सजाकर रखेगा। किसलिए? इसका मकसद क्या है? और मैं आपको आश्वासन देता हूँ, कि ध्यान करते-करते, एक दिन जरूर आयेगा, दो-तीन महीने में एक दिन अवस्था बन जाती है कि वस्तुतः शून्य घट जाता है। वक्त इसलिए लगता है कि हमारी पुरानी आदत छूटने में समय लगता है- थिंकिंग एडिक्शन से, लगातार विचारने की आदत से मुक्त होने में।

हम कितने एडिक्टिड हो गए हैं! जैसे लोग शराब के, नशे के, ड्रग्स के, सिगरेट के आदी हो जाते हैं, लत पड़ जाती है। हम भी एक प्रकार से विचार एडिक्टिड हैं, कर्म एडिक्टिड हैं। या तो हम कुछ करेंगे शरीर से या शरीर से कुछ नहीं करेंगे तो दिमाग से कुछ करेंगे। कुछ न कुछ हम करते ही रहते हैं। जब तक कि हम बिल्कुल थक न जाएं और नींद हावी न हो जाए और नींद में भी हम अच्छे से विश्राम नहीं करते; सपने देखते रहते हैं। लगातार कुछ न कुछ क्रिया चलती रहती है, शारीरिक या मानसिक। यह गहरे से गहरा एडिक्शन है। शराब या सिगरेट छोड़ना सरल है; ड्रग छोड़ना ज्यादा सरल है। यह विचारों का एडिक्शन छोड़ना कोई हंसी खेल नहीं है। जब आप ध्यान करने बैठोगे तब आपको पता चलेगा कि पाँच सैकिण्ड को भी इससे मुक्त होना कितना कठिन है! लेकिन अगर आपने धीरज रखा, प्रतीक्षापूर्वक आप रोज आधा घण्टा-एक घण्टा देते रहे, देते रहे, देते रहे; सुनिश्चित समझें कि दो-तीन महीने के भीतर धीरे-धीरे वह पाँच सेकिण्ड, दस सेकिण्ड, पन्द्रह सेकिण्ड के अंतराल आने लगेंगे। बीच-बीच में कभी अद्‌भुत, आनंद से ओतप्रोत गैप आने लगेंगे।

एक विचार चला गया, दूसरा अभी आया नहीं, बीच में एक शून्य है। कुछ भी नहीं है उसमें और अचानक जैसे बिजली चमक जायेगी उस शून्य में। छोटे-छोटे गैप आने शुरु हो जायेगे निर्विचार के, थॉटलेसनेस के। और धीरे-धीरे यह गहरा होने लगेगा और एक दिन आप पाओगे जब यह गैप बड़ा हो गया; बिल्कुल शून्य हो गए आप। तब जीवन की महा-सम्पदा आपके ऊपर बरस गई; जन्मों-जन्मों से जिसको खोज रहे थे वह आनन्द, वह शांति मिल गई, वह कहीं बाहर नहीं है, हमारे ही भीतर है लेकिन जब तक वह कूड़ा-कचरा साफ न हो तब तक असली हीरा

वहाँ जो छिपा है, वह हमें दिखाई भी नहीं देता।

तो प्यारे मित्रो, यह ध्यान समाधि केन्द्र यहाँ आरम्भ हो रहा है, आपसे निवेदन करूंगा थोड़ा सा समय निकाल लें, प्रयोग करके देख लें, मैं आपसे नहीं कहता कि मेरी बात पर आप विश्वास करें; ना ही किसी सत्य का दावा कर रहा हूँ, कम से कम प्रयोग करने को तो तैयार हो जाएं। थोड़े से दिन के लिए तैयार हो जाएं। आप जिन्दगी भर तो अपनी मर्जी से जीए हो; घंटा भर मेरी मर्जी के अनुसार भी जीकर देख लो और आप पाओगे आपकी पूरी जिन्दगी अकारथ गई। यह एक घंटा ही सार्थक साबित हुआ।

यह शान्ति हमारे ही भीतर थी, कहीं जाने की जरूरत नहीं थी; हम बेकार ही प्रार्थना करते रहे, दीप जलाते रहे और नारियल चढ़ाते रहे; फिजूल की कवायद करते रहे योग के नाम पर, आसन साधते रहे, न जाने क्या-क्या करते रहे! उस सब की कोई भी जरूरत न थी।

आपके शहर में यह ओशो ध्यान समाधि केन्द्र आपके जीवन में शून्यता उजागर करने में मददगार हो ऐसी शुभकामना करता हूँ। धन्यवाद एवं शुभ रात्रि।

प्रवचन-8

समाधि की शराब, असली सुरा

प्रश्नसार—

1. आदमी शराब क्यों और कब पीता है?
2. शराब सदा से प्रचलित, फिर भी असामाजिक क्यों?
3. परमात्म-अनुभूति को खुमारी की उपमा क्यों?
4. क्या नशा प्रभु की भक्ति में बाधक है?
5. 'नाम खुमारी नानका' क्या है?
6. उपनिषदों में 'रसो वै सः' का 'रस' क्या है?
7. राम-नाम सिमरन से कोई मस्ती मिलती है?
8. क्या समाधि कार्यक्रम रूखी-सूखी साधनाएं हैं?
9. एक संत का जीवन मस्त क्यों होता है?

आदमी शराब क्यों पीता है, और कब पीता है?

बाहर की शराब आदमी इसलिए पीता है, ताकि स्वयं का विस्मरण कर सके। स्वयं से बचना चाहता है। स्वयं से बचने के कई उपाय हैं। पद-मद है, धन-मद है, बाहर की व्यवस्था में डूबना भी एक तरह की शराब है। सबसे सरल उपाय स्वयं को भूलने का लोगों ने खोज लिये हैं- शराब और अन्य मादक द्रव्य, ये ध्यान से बचने के उपाय हैं।

लोग कब पीते हैं? बहाने ढूढ़ते हैं, कुछ लोग कहते हैं खुशी का क्षण है, उत्सव का क्षण है अभी तो पीना ही होगा। कुछ लोग कहते हुए मिल जाएंगे हम उदास हैं, दुखी हैं, गम गलत करने के लिए पी रहे हैं। सुख में भी आदमी स्वयं को भूल जाना चाहता है, दु:ख में भी अपने को भुलाना चाहता है। ठीक कारण तो यही है कि आत्म विस्मरण करने के लिए आदमी पीता है। परिस्थितियों का विस्मरण हो जाता है शराब से, एवं स्वयं का भी।

वैदिक काल से ही शराब पीने-पिलाने का प्रचलन है, फिर भी किसी काल में समाज ने इसे मान्यता नहीं दी है। ऐसा क्यों?

जो लोग अन्य प्रकार की शराब पी रहे हैं– धन की, पद की, सम्पत्ति की, शक्ति की, ज्ञान की; वे नहीं चाहते कि अन्य लोग कोई शार्टकट से उस स्थिति को पा लें जो उन्होंने इतनी मेहनत से पाई है। एक आदमी जिन्दगी भर

राजनीति की शराब पीने में लगा है। ये थोड़ा लांगकट है। एक आदमी ने नशे का इंजेक्शन लगा लिया, शराब पी ली, या भांग-गांजे का इस्तेमाल कर लिया यह शार्टकट है। दोनों एक-सी बेहोशी में जा रहे हैं। आध्यात्मिक रूप से कोई फर्क नहीं है। सच पूछो तो राजनीति का नशा बहुत लम्बा है। शायद पूरी जिन्दगी में भी न उतर पाए, कहना मुश्किल है! शराब या गांजे, चिलम का नशा तो कुछ घंटों में उतर जाता है। आध्यात्मिक दृष्टि से दोनों ही नशे है।

ज्ञान भी बहुत सूक्ष्म नशा है- वह विचारों की शराब है।

पीने-पिलाने का प्रचलन सदा से रहा है। वैदिक काल में ही सोम रस जैसी चीजें लोगों ने खोज ली थीं। लेकिन समाज से कभी भी इसे मान्यता प्राप्त नहीं हुई। कारण यह है कि बड़ी भीड़ जो है वह धन-पद-बल वालों द्वारा संचालित होती है। लोग संपत्ति-शक्ति के दीवाने हैं। वे समाज के ठेकेदार बनकर नशे के खिलाफ हो जाते हैं, वे नहीं चाहते कि किसी प्रकार से अन्य लोग थोड़ी सी भी सुख की झलक पा लें। दुखी आदमी को आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है। सुखी व्यक्ति को नियंत्रित नहीं किया जा सकता। किसी ने झूठी सुख की झलक भी पा ली, तो वह समाज के नियंत्रण, मान-मर्यादाओं के खिलाफ जा सकता है। विद्रोह कर सकता है, इसलिए समाज ने कभी भी शराब को मान्यता नहीं दी है। इसका कोई आध्यात्मिक या धार्मिक कारण नहीं है।

मैं भी शराब-विरोधी हूँ एक दूसरे दृष्टिकोण से। यह आत्म विस्मरण में ले जाती है। समाज के ठेकेदार, समाज के नेतागण भी खिलाफ हैं, उनकी खिलाफत का कारण दूसरा है। वे लोगों को झूठा सुखी भी देखना नहीं चाहते क्योंकि लोग नियंत्रण के बाहर चले जाएंगे।

परमात्मा की खुमारी को अनेक संतों ने शराब की संज्ञा दी है, ऐसा क्यों?

इस जगत में भीतर के अनुभव को समझाने के लिए कुछ थोड़ी ही उपमाएं, संज्ञाएं काम आ सकती हैं। शराब भी एक उपमा है। कबीर साहब कहते हैं 'पीवत राम रस लगी खुमारी' प्रेम की उपमा से भी समझाया जा सकता है। ये दो उपमाएं सर्वाधिक उपयुक्त हैं, भीतरी आनन्द को समझाने के लिए। इसलिए स्वाभाविक है इस दुख भरे संसार में आंतरिक आनन्द को, मस्ती को समझाने के लिए संतों ने प्रेम की या खुमारी की उपमा चुनी है।

धार्मिक लोग हमेशा कहते रहते हैं कि बाहर के नशे को छोड़ो और अपने भीतर प्रभु के नाम में मन लगाओ? क्या बाहर का नशा प्रभु की भक्ति में बाधक है?

कोई भी चीज बाधक या साधक नहीं होती, हमारा दृष्टिकोण उसे बाधक या साधक बना सकता है। बाहर का नशा प्रभु के नशे की तरफ इशारा करने वाला सांकेतिक मील का पत्थर भी बन सकता है, कि देखो बाहर के नशे में डूबकर जो सुख आया इससे ज्यादा विराट, शाश्वत आनन्द अपने भीतर के नशे में आता है। अगर इस प्रकार से किसी ने लिया तो बाहर की शराब भीतर की शराब को याद दिलाने वाली बन गई, प्रभु की तरफ इशारा करने वाली बन गई। किंतु 99 प्रतिशत तो बाहर का नशा प्रभु की भक्ति में बाधक है।

शराबी न सिर्फ बाह्य परिस्थिति को भूल रहा है बल्कि उसकी आत्म-विस्मृति भी घनी हो रही है। परमात्मा जो कि भीतर विद्यमान है, उससे भी नशा करने वाला व्यक्ति चूक जाएगा। बाहर के मार्ग पर तो उसके कदम लड़खड़ा ही रहे हैं, अन्दर की यात्रा पर भी वह नहीं चल पाएगा। इसलिए धार्मिक लोग सदा से नशे के खिलाफ रहे हैं। जहाँ तक छोड़ने और पाने का सवाल है, आपने पूछा है कि बाहर के नशे को छोड़ो ऐसा लोग कहते हैं और अपने भीतर मन लगाओ। मैं इसका क्रम, सिक्वैंस बदलना चाहूंगा।

उलटे क्रम में समझें। पहले भीतर पाएं; बाहर छूटना अपने-आप घटे यह ज्यादा उपयोगी होगा। पहले पाओ, त्याग अपने आप फलित होता है।

ओशो कहते हैं कि यदि किसी के पास कंकड़ हैं, उन चमकीले पत्थरों को वह जोर से पकड़े हुए है, उसे छोड़ने की कहो तो बात न बनेगी। हाँ उसे हीरे-जवाहरात मिल जाएं तो हाथ खाली करने के लिए उसे कंकड़-पत्थर छोड़ने ही होंगे। छोड़ना एक बाइ-प्रोडक्ट की तरह घटना चाहिए। त्याग पर ध्यान न हो, और बेहतर आनन्द पाने की तरफ ध्यान हो। फलस्वरूप त्याग घटे तो वह सुन्दर होता है।

बाहर का नशा छोड़कर जरूरी नहीं कि भीतर का मिल जाए। तब व्यक्ति त्रिशंकु की भांति लटक जाएगा बीच में। तब जो थोड़ी बहुत सुख की झलक थी वह भी चली गई। परमानन्द तो मिला नहीं। क्यों न हम इसको उलटे क्रम में रखें। पहले परमानन्द को पाओ, परिणामस्वरूप अपने आप ही बाहर का नशा छूट जाएगा। क्योंकि यह दिखाई देने लग जाएगा कि जब नशा करता हूँ तो आत्म-स्वरूप के प्रति जाग्रत नहीं रहता, मूर्च्छित हो जाता हूँ। तो भीतर के

आनन्द को जिसने पा लिया फिर वह विस्मरण करना नहीं चाहेगा।

लोग दुख को विस्मरण करना चाहते हैं सुख को नहीं। कौन पागल मस्ती को भुलाना चाहेगा? एक बार असली मस्ती का पता भर चल जाए! शराब का गुणधर्म है भुलाना। फिर कौन शराब पिएगा, क्यों पिएगा!

नशे और खुमारी में क्या अन्तर है? गुरु नानक जी ने कहा है–'नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रैन', यह नाम की खुमारी क्या है?

समाधि में डूबने पर, नाम स्मरण करने पर एक मस्ती छा जाती है। इसकी उपमा सबसे अच्छी प्रेम से और खुमारी से दी जा सकती है। सामान्य व्यक्ति के ये दो अनुभव इस प्रकार के हैं जो कि भीतर के अनुभव से थोड़े बहुत मिलते हैं।

फर्क बस इतना है कि बाहर की खुमारी थोड़ी देर में उतर जाती है।

नानक कहते हैं भीतर की खुमारी चढ़ी रहे दिन-रैन, सदा-सदा, चौबीसों घंटे एक सी चढ़ी रहती है। क्योंकि इसका कारण बाहर की कोई वस्तु या परिस्थिति नहीं है। यह कोई मादक तत्त्व नहीं है। यह आत्मा की स्वाभाविक अवस्था है। भीतर ओंकार-नाम गूंज रहा है उसमें जब व्यक्ति स्थित हो जाता है तो परम मस्ती की अवस्था में डूब जाता है, वही नाम की खुमारी है।

उपनिषदों के वाक्य 'रसो वै सः' का 'रस' क्या है और कहाँ है?

सामान्यतः हमने केवल बाहर के रस ही जाने हैं, एक रस और है जिसे हम आत्म-रस कह सकते हैं। वह हमारे भीतर ही है। उपनिषद् के ऋषि उसी ओर इशारा कर रहे हैं।

रस कहने का एक कारण और है। बाहर हम किसी वस्तु का स्वाद लेते हैं, समझो मिठाई खा रहे हैं, या कोई फल; तो मिठाई या फल तो दृश्य हैं। पदार्थगत जगत का हिस्सा है। उनके भीतर छिपा हुआ जो रस है वह अदृश्य, सूक्ष्म हिस्सा है। ठीक इसी प्रकार यह जगत, हमारा शरीर, हमारा मन, यह दृश्य जगत का हिस्सा है। इसके भीतर छिपा हुआ परमात्म-तत्त्व चैतन्य है, वह रस के तुल्य है।

इसलिए रस का प्रयोग किया गया है दृश्य से हटकर अदृश्य की ओर इशारा करने के लिए। गुलाब जामुन दिखाई देती है, उसके भीतर की मिठास दिखाई नहीं देती। रस का वैसा प्रतीकात्मक भावार्थ है- स्वयं के भीतर डूबने का मजा।

क्या राम नाम सिमरन में या ध्यान करने में भी नशा सदृश्य कोई मस्ती मिलती है?

निश्चित रूप से, उसे नशा या मस्ती कहा जा सकता है। एक आंतरिक नशा, एक अकारण मस्ती। उसका स्रोत हमारा स्वयं का होना है। वह मस्ती हमारी चेतना का स्वभाव है जो किसी बाहरी कारण, बाहरी परिस्थिति से उत्पन्न नहीं होती। वह हमारी सहज दशा ही है। ध्यान में हम उसके प्रति जागरुक हो जाते हैं। सामान्य व्यक्ति के भीतर भी वह मौजूद है। किन्तु वह स्वयं के प्रति जागरूक नहीं है। जैसे ही वह भीतर की ओर मुड़ता है, आत्म स्मरण से भरता है, मस्ती में घिर जाता है।

ओशोधारा के जो समाधि कार्यक्रम चलते हैं उनसे भी जीवन में कुछ मस्ती आती है अथवा यहाँ रूखी-सूखी साधनाएं चल रही हैं?

साधनाएं रूखी-सूखी नहीं होतीं। साधनाएं सभी मस्ती के लिए होती हैं। आनन्द के लिए होती हैं। ऐसा सवाल क्यों उठता है, इसका कारण समझें।

अतीत में बहुत से मनुष्य धर्म और आध्यात्मिकता में उत्सुक हुए। उन्होंने भांति-भांति से स्वयं को कष्ट देने के उपाय किये। अपने शरीर को सताया। उपवास किए, उल्टे-सीधे आसन किए, कांटों की सेज पर लेटे। अपने शरीर को सताना ही धीरे-धीरे साधना समझा जाने लगा। इसलिए प्रश्न उठता है कि क्या रूखी-सूखी साधनाएं चल रही हैं? मैं आपसे कहना चाहता हूं वैसी साधनाएं सच्ची साधनाएं हैं ही नहीं।

साधना का तो एक ही अर्थ है कि हमारा जीवन सुंदर कैसे हो, ज्यादा मधुर कैसे हो, ज्यादा प्रेमपूर्ण और मस्ती से भरा कैसे हो? यही विधायक जीवन दृष्टि वास्तविक साधना है। तपस्या को साधना न समझें। निश्चित ही ओशोधारा के कार्यक्रम उसी मस्ती व आनन्द की तरफ ले जाने के उपाय हैं।

एक संत का जीवन मस्त क्यों होता है? आध्यात्मिकता और मस्ती में क्या संबंध है?

सच पूछो तो आध्यात्मिकता और मस्ती पर्यायवाची हैं। जहाँ मस्ती दिखाई न दे प्रेम-आनन्द न हो, वहां आध्यात्मिकता नहीं है। वह व्यक्ति संत नहीं है। संतों के नाम पर बहुत प्रकार के मानसिक रूप से अविकसित एवं रुग्ण लोग अतीत में हुए हैं। भूलवश उन्हें संत कहा गया। संत तो वह है जो शांत हो, मस्त हो, आनन्दित हो, प्रेम से लबालब हो। उसका जीवन तो उत्सवमय होगा। इसलिए आध्यत्मिकता और मस्ती पर्यायवाची हैं। कई लोग मेरे पास आते हैं कहते हैं, ईश्वर की हमें खोज नहीं करनी है। मैं कहता हूं ईश्वर की बात छोड़ो; तुम्हें आनन्द की, मस्ती की तो तलाश तो है न?

ईश्वर शब्द को हटाया जा सकता है। आनन्द को नहीं हटाया जा सकता है। उपनिषदों ने ईश्वर की परिभाषा सच्चिदानन्द से की है। आनन्द उसका गहनतम रूप है। उन्होंने सत्-चित्-आनन्द में आनन्द को सर्वोपरि रखा है।

ओशो ने एक प्रवचन में कहा है आनन्द अन्तिम परिभाषा है परमात्मा की। संत का जीवन तो आनन्द से भरा होगा, वही असली आध्यात्मिकता का लक्षण है। इस सत्र को यहीं विराम देते हैं। धन्यवाद और शुभ रात्रि।

प्रवचन-9

ओशो का महान योगदान

ओशो गंगोत्रीधाम, रायल नेशनल चितवन पार्क, सौराहा, नेपाल में साधकों व ओशो प्रेमियों की मित्र-मंडली को दिया उद्‌बोधन।

ओशो के साथ इस धरती पर, धर्म के जगत में एक महाक्रान्ति घटित हुई, ओशो के पहले तक धर्म एक बड़ी गम्भीर बात थी। ओशो ने एक हँसता, नाचता, उत्सव मनाता हुआ धर्म हमें दिया, धर्म की परिभाषा ही बदल गई। बंगाल के संत चंडीदास के मधुर शब्दों में-

'उत्सव अमार जाति, आनन्द अमार गोत्र।'

यही संन्यास का सारसूत्र परमगुरु ने हमें दिया। उसके पहले तक संन्यास बड़ी गम्भीर, बड़ी कठिन, क्लिष्ट, निषेधात्मक और त्यागवादी धारणा थी। ओशो ने जीवन के महोत्सव को संन्यास का रूप दिया, धर्म का पर्याय किया।

ओशो के जो अद्‌भुत योगदान है, उनमें एक की मैं चर्चा करना चाहूँगा।

ओशो के पहले तक अलग-अलग सम्प्रदाय, अलग-अलग धर्म, अलग-अलग मार्ग यह जिद्‌द करते थे कि सिर्फ उनका मार्ग सही है, शेष सब मार्ग गलत हैं। योगी समझता था कि सिर्फ योग ही ठीक है। तंत्र गलत है, सूफी गलत हैं, बाउल गलत हैं, झेन गलत है। जो ध्यान करने वाले थे, वे सोचते थे कि भक्ति और अन्य मार्ग भटका देंगे। सबकी मान्यता थी कि सिर्फ यही मार्ग ठीक है। भक्त मानते थे कि सिर्फ भक्ति मार्ग ठीक है, ज्ञान बिल्कुल बकवास है, उसकी क्या जरूरत है? ध्यान-कर्मादि सब व्यर्थ है।

मेरी प्रतीति है कि शायद अतीत में यह जरूरी था- ऐसा कहना कि यही मार्ग सही है, अनिवार्य था ताकि लोग संकल्पित हो उस मार्ग पर चल सकें।

उसके कुछ फायदे थे, कुछ नुकसान भी थे। लाभ यह था कि जो व्यक्ति दृढ़ निश्चय के साथ, ऐसा जानकर कि यही एकमात्र सही मार्ग है; उस पर चल रहा था, तो उसके चलने में एक दृढ़ता थी, मजबूती थी। जैसे हम एक चौराहे पर खड़े हों जहाँ से चार रास्ते जाते हैं। यदि कोई आपसे कहे कि यह मार्ग सही है, वह मार्ग भी सही है। यहाँ से पहुँच जाओगे, वहाँ से भी जाओगे तो भी पहुँच जाओगे। चारों मार्गों से पहुँचा जा सकता है मंजिल तक, तो बहुत सम्भावना यह है कि आप वहीं, चौराहे पर खड़े रह जाएं, किसी भी मार्ग पर न चल पाएं। इसलिए अतीत के बुद्ध पुरुषों ने ऐसे वक्तव्य नहीं दिए; क्योंकि छोटी-छोटी जगहों में वे सीमित रहे। बुद्ध यात्रा कर रहे थे पैदल, कितनी यात्रा कर सकेंगे? एक सीमित छोटे से इलाके में घूम-फिर सकेंगे। थोड़े से लोगों के सम्पर्क में आएंगे, तो उन्हें निश्चयात्मक बात कहनी जरूरी थी कि यह एक मार्ग सही है, बाएं तरफ से जाओगे तो मंजिल पर पहुँचोगे। दूसरे मार्गों से जाओगे तो भटक जाओगे। यह करुणावश कहा था उस शिष्य को देखकर, साधक को देखकर ताकि फिर उसका चंचल चित्त दूसरे मार्गों पर न भटके।

लेकिन इसका नुकसान भी था। नुकसान यह था कि सिर्फ एक विशेष प्रकार के लोग, एक पर्टिकुलर ग्रुप उस मार्ग से चल सकता था, सबके लिए वह मार्ग नहीं था। किसी के लिए ज्ञान मार्ग है, किसी के लिए भक्ति मार्ग है, किसी के लिए सूफी में सरलता होगी, किसी को झेन के माध्यम से जाना आसान होगा, किसी को कुछ और भाएगा। किसी के लिए कोई भी विधि जरूरी न हो, शायद अष्टावक्र का रास्ता यानि अमार्ग, अविधि उपयोगी हो!

दुनिया में बहुत तरह के लोग हैं अलग-अलग मार्ग अलग-अलग लोगों के लिए सम्भव हैं। अतीत में ऐसा कहना जरूरी था ताकि जो एक विशेष पर्टिकुलर ग्रुप उस गुरु के पास आया है, उन्हें एक निश्चित मार्ग पर ले जा सके। तो उसकी कुछ खूबी थी कि जो भी उत्सुक हुआ, जिसका उस तरफ रूझान था उसके लिए एक निश्चयात्मकता थी, वह उस मार्ग पर चलता गया।

नुकसान यह हुआ कि बहुत बड़ा वर्ग प्रभावित नहीं हो सका।

मान लीजिए ध्यान का मार्ग है, महावीर का संकल्प-मार्ग है, अब उसमें स्त्रियों के लिए कोई जगह नहीं बची। महावीर को तो मना ही करना पड़ा कि स्त्रियां मोक्ष पा ही नहीं सकती। इसलिए नहीं कि यह सत्य है, वरन इसलिए ताकि स्त्रियाँ इस मार्ग पर न आएं। वे अगर आएंगी तो व्यर्थ समय खराब होगा, वे इस मार्ग पर चल नहीं पाएंगी। उनके लिए तो समर्पण का मार्ग है, भक्ति

उनके लिए मार्ग बनेगी, संकल्प मार्ग नहीं बनेगा। तो यह करुणा थी उनकी कि उन्हें मना करना पड़ा कि स्त्रियां मोक्ष नहीं पा सकतीं ताकि वे कोई दूसरा मार्ग चुनें, इस मार्ग से न चलें।

अतीत में ऐसा हुआ। इससे भिन्न होना संभव नहीं था।

फिर आधुनिक युग में वैज्ञानिक क्रांति के बाद नई संभावनाएं खुलीं।

ओशो के समय आते-आते दुनिया एक ग्लोबल विलेज में परिवर्तित हो गई। कम्यूनिकेशन के साधन बढ़े और विज्ञान में बहुत उन्नति हुई। और पूरी दुनिया एक छोटा सा गाँव बन गई। सारी सूचनाएं सबको उपलब्ध हैं।

अतीत में ऐसा नहीं था। आप नेपाल में पैदा हुए, हिन्दू धर्म में पैदा हुए, हिन्दू देश है। आपको कभी पता भी नहीं चलेगा कि दुनिया में कहीं झरथुस्त्र या लाओत्से हुए हैं कि उन्होंने भी कुछ कहा है, कि ताओ-तेह-किंग जैसा भी कोई धर्मग्रन्थ है। अलग-अलग मार्गों का कभी पता ही नहीं चल सकता था। आज हम जिस दुनिया में जी रहे हैं, इन्फॅरमेशन तकनीक और कम्यूनिकेशन इतना बढ़ गया है कि सबको सब चीजों के बारे में पता है।

आज आपसे अगर कोई कहे कि सिर्फ यही मार्ग सही है, बाकी सब गलत हैं तो पहले जो बात उपयोगी थी, अब वही बात अनुपयोगी हो गई। अब ये बात शक पैदा करेगी कि यह आदमी जो कह रहा है कि एक ही मार्ग सही है, हो सकता है यह भी गलत हो। क्योंकि दूसरे मार्ग हैं, आप देखेंगे कि दूसरे लोग हैं, वे दूसरे मार्गों से अपनी मंजिल पर पहुँच गए। पुरानी बात अब काम की नहीं रही।

ओशो ने बहुत बड़ा काम किया, उन्होंने दुनिया के समस्त बुद्ध पुरुषों ने जो-जो मार्ग बनाए- चाहे वे बुद्ध हों, महावीर, कृष्ण, राम, गोरखनाथ, कबीर, सरहपा हों;

या तिलोपा, नरोपा, चीन में हुए च्वांगत्सू, लीहत्जू, लाओत्सु, यूनान में हुए दार्शनिक साक्रेटीज, प्लेटो, हेराक्लाइटस, दुनिया में जहाँ भी बुद्ध पुरुष हुए और मंजिल तक पहुँचने के जो भी रास्ते उन्होंने खोजे, ओशो ने उन सबको इकट्ठा, एक जगह उद्घाटित कर दिया और कहा कि सभी मार्गों से पहुँचा जा सकता है।

आपको दिल्ली से काठमाण्डू जाना है, काठमाण्डू हवाई जहाज से भी जा सकते हैं, उसका अलग नक्शा है। ट्रेन से भी जा सकते हैं, फिर बदलना पड़ेगा रास्ता हमें। भारत के बार्डर से फिर बस पकड़नी पड़ेगी, उसका भी रास्ता है। बाई रोड जाने के भी विभिन्न मार्ग हैं। सब मार्ग जा सकते हैं, सबसे पहुँचना सम्भव है।

इसका बड़ा फायदा यह हुआ कि लोगों के अन्दर जो हठधर्मिता थी कि सिर्फ मेरा मार्ग सही है, शेष सब गलत हैं, वो जो जिद थी, एक पागलपन था, जिससे फेनेटिक पैदा होते थे, वो बात खत्म हो गई। आज हम जानते हैं कि तन्त्र भी सही है, योग भी सही है, भक्ति भी सही है, ध्यान भी सही है, झेन भी सही है, ताओ भी सही है। अब हमारे ऊपर है कि हम किस मार्ग से चलते हैं। हमारा व्यक्तिगत रुझान क्या है? निजी पसंद क्या है?

तो फायदा हुआ कि जो फेनेटिक माइंड पैदा होता था, वो ओशो के शिष्यों में पैदा नहीं होगा। आप जानते हैं कि आपको विपस्सना अच्छा लगता है लेकिन आपके पड़ोसी मित्र हैं, उनको सक्रिय ध्यान अच्छा लगता है। इन दोनों में कोई विरोध नहीं, आपका मार्ग विपस्सना का है, उनका मार्ग सक्रिय ध्यान का है। लेकिन इसके साथ-साथ एक नुकसान भी हुआ।

नुकसान यह हुआ, चूंकि ओशो ने सारे नक्शे दे दिए, हवाई जहाज का नक्शा भी है, रेलवे का नक्शा भी है, पानी के जहाज से जाना है तो उसका नक्शा भी है। पैदल जाने का मार्ग भी है, पगडंडी का मार्ग भी है और बिना किसी मार्ग के पहुँचना हो तो उसका भी उपाय है। ये सारी चीजें उन्होंने एक साथ, एक जगह मौजूद कर दीं। ओशो-साहित्य में सब कुछ है। संभावित हानि यह है कि कन्फ्यूजन क्रियेट हो सकता है, दिशा-भ्रम हो सकता है कि मैं किस मार्ग से जाऊँ? कैसे यात्रा करूँ?

कुछ लोग ऐसा करेंगे, थोड़ी दूर ट्रेन में बैठ कर गए, फिर ट्रेन से उतर गए, फिर बस में बैठ गए, फिर बस से उतर गए, फिर वहाँ से हवाई जहाज पकड़ लिया। बड़ा मुश्किल काम हो गया। फिर गोल चक्कर लगा रहे हैं, पता चला कि लौटकर फिर वहीं के वहीं आ गए, कहीं यात्रा नहीं हो पा रही है।

यह हानि की सम्भावना है, सम्भावना का पता हो तो उस हानि से बचा जा सकता है, खतरे से रक्षा की जा सकती है।

ऐसा समझें कि एक मेडिकल स्टोर है- दवाई की दुकान। उसमें सब प्रकार की दवाइयाँ उपलब्ध हैं। एलोपैथी की दवाइयाँ हैं, होम्योपैथी की दवाइयाँ भी हैं, आयुर्वेदिक जड़ी बूटियाँ हैं, यूनानी ईलाज है, एक्यूप्रैशर और एक्यूपंचर के साधन भी है, जितनी थैरेपी हो सकती हैं मनुष्य को स्वस्थ करने के लिए, सब उपलब्ध है। अब सवाल ये उठता है कि आप उस दुकान में पहुँचकर अपने लिए दवाई कैसे चुनें?

एक डॉक्टर का प्रिस्क्रिप्शन तो चाहिए ही, जो व्यक्तिगत रूप से देखकर आपकी निजी जाँच-पड़ताल करके, आपके मन को समझकर आपको बता सके कि आपकी ये दवाइयाँ हैं और फिर वे दवाइयाँ कितने दिन लेनी हैं। अगर उसी दवाई को जिन्दगी भर लेते रहे, तीन महीने का प्रिस्क्रिप्शन था और आप जिन्दगी भर उसे लेते रहे, वो दवाई की जगह जहर हो जाएगी। हर दवाई का एक उपयोग है, एक सीमा है। एक समय तक उसका उपयोग है, फिर उसको छोड़ना होगा।

हो सकता है आज आपको जिस चीज की जरूरत है, आज से छः महीने बाद किसी दूसरी चीज की जरूरत होगी। स्थिति बदल गई, बीमारी चेंज हो गई। तो ओशो के साहित्य में से आप क्या पढ़ेंगे? ओशो की पाँच हजार कैसेट्स में से आप कौन सी सुनेंगे? एक नए साधक के लिए मार्गदर्शन जरूरी है।

ओशो ने तो सब प्रकार की विधियां, जो भी संभव हैं हमें दी हैं। किंतु बिना व्यक्तिगत मार्गदर्शन के औषधि चुनना मुश्किल है।

अभी मैं जहाँ रहता हूँ, अमलाई में, वहाँ मेरे एक मित्र हैं, उनको महागीता पढ़ना पसन्द आता है, अष्टावक्र-जनक संवाद। मैंने उनसे कई बार कहा कि इस किताब को आप न पढ़ें क्योंकि ओशो इस पर जब बोले हैं, अष्टावक्र पर; तो ओशो ने इसको इतनी बार पोस्टपोन किया है कि हमारे जो पुराने संन्यासी मित्र हैं; अनुराग जी बैठे हैं, चैतन्य भारती जी बैठे हैं, ओम भारती जी, इनको पता होगा। रजनीश न्यूज लैटर उस समय प्रकाशित होता था। ओशो अगले छः महीने में क्या-क्या प्रवचन देंगे, वह उसमें प्रकाशित होता था। कई बार पब्लिश हुआ कि फलां तारीख से फलां तारीख तक ओशो अष्टावक्र पर बोलेंगे। लेकिन जब समय आया, ओशो ने उसको फिर स्थगित कर दिया- छः महीने बाद। छः महीने बाद का समय आया, ओशो ने फिर पोस्टपोन कर दिया।

करीब-करीब चार साल बाद ओशो अष्टावक्र पर बोले। और जब बोले तो उन्होंने कहा कि मैं उपयुक्त समय की प्रतीक्षा में था कि तुम उस योग्य हो जाओ कि तुम अष्टावक्र की सूक्ष्म बात को समझ सको। एक तैयारी जरूरी है। दस-बीस

साल से जो व्यक्ति तैयार हो रहा था ओशो के साथ, वे जाकर उस समय उस स्थिति में आए कि ओशो अष्टावक्र के ऊपर प्रवचन दे सके।

अब खतरा है, एक नया साधक जो शुरू में ही अष्टावक्र को पढ़ लेगा कि कोई मार्ग की जरूरत नहीं, किसी विधि को नहीं करना है; उसके अहंकार को तो बहुत मजा आएगा कि मुझे कुछ करना नहीं क्योंकि सारा उत्तरदायित्व समाप्त हो गया। मैं तो परमात्मा हूँ ही, शुद्ध-बुद्ध चैतन्य स्वरूप हूँ; अब क्या करना है? यह सत्य बात अहंकार को बल देगी लेकिन उपयोगी साबित नहीं होगी।

अमलाई में मैंने उन मित्र से कई बार कहा कि आप ये अष्टावक्र की महागीता अभी न पढ़े। आपको पढ़ना है, आप साधना पथ पढ़ें, क्रांतिबीज पढ़ें, जिन खोजा तिन पाइयां देखें। लेकिन उन सज्जन ने कहा, नहीं। क्योंकि जिन खोजा तिन पाइयां पढ़ो तो कुछ करना पड़ेगा। सक्रिय ध्यान करना पड़ेगा, संकल्प लेना होगा, संघर्ष करना होगा।

आदमी अपने आलस्य की वजह से एक आड़ बना लेता है। ऐसे दर्शनशास्त्र को पकड़ लेगा जो उसके लिए बाधा बन जाएगा। वह सोचेगा कि यह है बड़ा उपयोगी, यह बात बिल्कुल ठीक लगती है कि मैं शुद्ध-बुद्ध साक्षी चैतन्य हूँ। मैं तो बोध मात्र हूँ, मुझे क्या करना? साधना की क्या जरूरत है?

तो मित्रो, ओशो ने अति महान कार्य किया है, उन्होंने दुनिया के सारे मार्गों का सार निचोड़, सार तत्व हमें दे दिया है। मेडिकल की पूरी दुकान, उन्होंने एक जगह खोलकर रख दी है। उन्होंने स्पष्ट बता दिया है कि होम्योपैथी भी काम करती है, एलोपैथी भी काम करती है, एक्यूप्रैशर भी काम करेगा। यदि कोई दवाई नहीं लेना है तो भी ठीक हो सकते हो।

लेकिन हम उसमें से क्या चुनें? इसके लिए एक डॉक्टर के प्रिस्क्रिप्शन की जरूरत होगी। अगर सब दवाइयों का घोल बनाकर पी जाएंगे, तो वो जहर साबित होगा। वह दवाई साबित नहीं होगी।

तो मैं आपसे ये कहना चाहता हूँ, पुराने मित्रों से भी और विशेष रूप से नए मित्रों से भी यह आग्रह करना चाहता हूँ कि एक विशेष दिशा, एक विशेष मार्ग, आपको व्यक्तिगत रूप से देखकर दिया जाना जरूरी है। एक विशेष साधना, वह भी एक विशेष समय तक। आज कोई दवाई प्रिस्क्राइब कर दी तो यह मतलब नहीं कि आप जिन्दगी भर उस दवाई को खाते रहेंगे।

अब मैं चर्चा समाप्त करता हूं एवं ओशो सिद्धार्थ जी को आमंत्रित करता हूं। कि वे हम सबको संबोधित करें।

हम बहुत सौभाग्यशाली हैं, आज यहां स्वामी सिद्धार्थ जी जैसे एक प्रज्ञापूर्ण व्यक्ति, जिन्होंने ध्यान की अत्यांतिक गहराईयों को छू लिया है, वे हमारे बीच मौजूद हैं। मैं उनसे निवेदन करना चाहूँगा कि वे हमें ध्यान के इस पूरे मार्ग का एक नक्शा दें। क्या हमारी मंजिल है, क्या हमारा मार्ग है? कैसे हमें उस पर चलना है?

कैसे हम समझें कि अब मार्ग बदलना है, कि राह पर मोड़ आ रहा है? उस सम्बन्ध में हमें दिशा निर्देश दें ताकि हम में से प्रत्येक व्यक्ति अपनी मंजिल तक पहुँचने में सफल हो सके। मैं आमन्त्रित करता हूँ स्वामी आनन्द सिद्धार्थ जी को।

प्रवचन-10

अध्यात्म का संपूर्ण नक्सा

ओशो गंगोत्रीधाम, रायल नेशनल चितवन पार्क, सौराहा, नेपाल में ओशो के योगदान पर एक विहंगम दृष्टि।

मेरे प्रिय आत्मन्,

आज ओशो के महापरिनिर्वाण का दिवस है। ओशो से जुड़े, जितने भी साधक हैं, उनके लिए एक बहुत महत्वपूर्ण दिन है। मैं बहुत ही आह्लादित हूँ कि आज आप सबके बीच ओशो की पूरी देशना के सम्बंध में, ओशो की पूरी वांङ्मय के सम्बन्ध में, ओशो द्वारा निर्दिष्ट सभी मार्गों के सम्बन्ध में, मील के सारे पत्थरों के विषय में, यात्रा के सारे आयामों के विषय में, हम विहंगम दृष्टि से चर्चा करेंगे।

दुनिया के सभी बुद्धपुरुषों- बुद्ध, कबीर, महावीर, ओशो ने अध्यात्म की यात्रा-निर्देश देते हुए चार चरणों की चर्चा की है। चाहे आप जिस मार्ग से चलते हों, अध्यात्म की यात्रा में आवश्यक रूप से ये चार सोपान आते हैं। मील के ये चार पत्थर हर साधक को मंजिल तक पहुँचने के रास्ते में मिलते हैं। यह सुविधा हो जाती है हर राही को, कि वह मील के किस पत्थर पर खड़ा है। यात्रा का कितना भाग तय कर लिया है और कितना शेष है।

उन चार चरणों के सम्बन्ध में पहले जान लें ताकि हम अपने आप को जानें कि हम किस मील के पत्थर पर खड़े हैं। क्योंकि जब भी हम किसी मार्ग पर चलते हैं तो कुछ बातों के विषय में जानना बहुत जरूरी है। पहली

बात जाना कहाँ है? मुझे ये कहते हुए बड़ा हर्ष है, ओशो से जुड़े हुए सभी संन्यासी, इस बात के विषय में संदिग्ध नहीं हैं कि उन्हें जाना कहाँ है?

मुझे सौभाग्य मिला है, अध्यात्म की विभिन्न धाराओं के गुरुओं से मिलने का। और मैंने देखा है कि उनके शिष्यों के बीच मंजिल के विषय में भी पता नहीं है कि उन्हें जाना कहाँ है? गुरु से कोई जुड़ा है, कि संसार में उसका कोई बुरा न हो, प्रमोशन हो जाए, धन प्राप्त हो जाए। मकान बन जाए, रोग दूर हो जाए, बेटी का विवाह हो जाए...इत्यादि। अगर वह कोई गलती कर रहा है, उसके चलते कोई अनर्थ होने वाला है; तो गुरु उसकी रक्षा करेगा।

किंतु ओशो से जो लोग भी जुड़े, मंजिल के विषय में उनके बीच कोई संभ्रम की स्थिति नहीं है। वे जानते हैं कि मंजिल है संबोधि, आत्म ज्ञान। लक्ष्य है स्वयं को जानना। इस मामले में ओशो के संन्यासी बड़े सौभाग्यशाली हैं, कोई तृष्णावश मनोकामना-पूर्ति हेतु ओशो से नहीं जुड़ा नहीं है।

दूसरी बात जानना जरूरी है कि हम कहाँ खड़े हैं? अगर दिल्ली जाना है और हम काठमाण्डू में हैं, तो दिशा हमारी पश्चिम की ओर होगी। लेकिन कोई अगर मद्रास या त्रिवेन्द्रम में है तो पश्चिम की ओर गति करने में भटक जाएगा। इसलिए दूसरी बात जानना ये बहुत जरूरी है कि हम कहाँ पर है? और उसी से दिशा का निर्धारण होगा।

तीसरी बात जानना जरूरी है, कि हमारे मार्ग में कौन-कौन से शहर आएंगे? हमारे मार्ग में कौन-कौन से मील के पत्थर आएंगे? हम कहाँ तक पहुँचे हैं और कहाँ तक पहुँचना बाकी है? इन दो बातों के संबंध में हमारे

संन्यासियों को थोड़ी-सी दिग्भ्रमित स्थिति है। हम कहाँ खड़े हैं, हमारी दिशा क्या होगी? ओशो ने अलग-अलग स्थानों से मंजिल पर पहुँचने के विविध मार्ग बताएं हैं। निश्चित ही जब तक हमें यह ज्ञान नहीं है कि हम कहाँ खड़ें हैं, हमारी दिशा क्या होगी? मंजिल तक पहुँचना हमारे लिए मुश्किल होगा।

तो सबसे पहले तो मैं चर्चा कर लूं मार्ग के विषय में ताकि आपको यह पता चल जाए कि हम कहाँ खड़े हैं? अध्यात्म की दिशा में, भीतर यात्रा में हिन्दू वाङ्मय के मुताबिक पहला चरण है, शास्त्रतः। शास्त्र पहला चरण है, चाहे वो उपनिषद हो, कि बाइबिल, चाहे धम्मपद हो, कि जपजी हो, या ओशो का साहित्य हो, पहला मार्ग शास्त्र है।

शास्त्र क्या देगा हमें? शास्त्र प्रज्ञा देगा, समझ देगा, सम्यक दृष्टि देगा। शास्त्र एक ऐसी नजर देगा, कि अध्यात्म की यात्रा हम तय कर पाएंगे। बस प्रज्ञा ही दे सकता है शास्त्र, इससे आगे शास्त्र नहीं ले जा सकता। बच्चनजी ने एक बड़ी प्यारी कविता लिखी है, जो मुझे बहुत पसन्द है-

धर्मग्रन्थ सब जला चुकी हो, जिसके अन्तर की ज्वाला,
मंदिर, मस्जिद, गिरजे, सबको, तोड़ चुका जो मतवाला;
पण्डित, मौमिन, पादरियों के, फंदों को जो काट चुका,
कर सकती है आज उसी का स्वागत, मेरी मधुशाला।

शास्त्र से कोई सोचे कि वह सत्य को पा जायेगा, तो शास्त्र से सत्य मिलता नहीं। व्यास ने सर्वाधिक शास्त्र लिखे, अठारहों पुराण, चारों वेद, महाभारत, उपनिषदों का संकलन किया। किसी ने पूछा आपने इतने शास्त्र लिखे। मनुष्य को सत्य तक पहुँचने के इतने इशारे किए कि मनुष्यता आपका उपकार कभी भूलेगी नहीं। व्यास ने बहुत प्यारा वचन कहा, व्यास ने कहा मैंने जरूर शास्त्रों की रचना की। मगर याद रखना शास्त्र कभी सत्य तक नहीं पहुँचाता-

श्रुतिः बहिः, स्मृतिः च बहिः, न एको मुनिः कस्य वचनम् प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्वम् निहितम् गुह्यायाम्, महाजनौ ये गते सो पंथः॥

ओशो ने श्रुत की बड़ी सुन्दर व्याख्या की है- श्रुतियां एवं स्मृतियाँ भिन्न-भिन्न बात कहती हैं। इस जगत में ऐसा कोई मुनि या ऋषि नहीं हुआ, जिसके शब्दों को, जिसके वचनों को प्रामाणिक माना जाए। धर्म का तत्व क्योंकि सबके हृदय की गुफा में स्थित है, इसलिए बुद्धपुरुष जिस मार्ग से

चलते हैं, वही मार्ग है।

शास्त्र की यात्रा यहाँ तक आकर समाप्त हो जाती है कि ऐसे किसी सत्य जानने वाले व्यक्ति को पकड़ो जो आगे तुम्हारा मार्गदर्शक साबित हो सके। शास्त्रतः पहला चरण। लाओत्से पर जब ओशो बोलते थे, आपको कथा मालूम

ही होगी। चीन छोड़कर हिमालय जा रहा था लाओत्सु। वहाँ के राजा ने कहा कि जिस सत्य को तुमने जाना है, उसे एक किताब में लिख दो। लाओत्सु बोला कि ये बड़ा धर्मसंकट है, मैं सत्य को शब्दों में कह नहीं सकता, अनुभव को अभिव्यक्त नहीं कर सकता हूँ।

भारत और तिब्बत की सीमा पर, चैक पोस्ट पर चुंगी अधिकारी ने कहा कि तुम्हें चुंगी देकर जाना होगा, उसने कहा मैं फकीर हूं, चुंगी दे नहीं सकता, मेरे पास कुछ भी नहीं है। चुंगी अधिकारी ने कहा तब तो राजा से पूछना होगा। घुड़सवार दौड़ाए गए, लाओत्से नाम का फकीर देश से बाहर जा रहा है। कहता है, चुंगी देने को मेरे पास कुछ भी नहीं है।

राजा ने कहा चीन की सबसे बड़ी सम्पत्ति लाओत्सु के पास है। सत्य की सम्पदा का मालिक है वह, उससे तो कुछ लिखवाना होगा। तो मजबूरी में चैक पोस्ट पर बैठकर उसने एक अद्भुत किताब लिखी– ताओ तेह किंग। उसका पहला वचन ही बड़ा अनूठा लिखा कि परम सत्य को शब्दों में नहीं कहा सकता और जो कहा जा सकता है, वो परम सत्य नहीं हो सकता।

इसलिए जब मैं कहता हूँ कि शास्त्र थोड़ी दूर तक ले जाता है तो मैं सारे शास्त्रों को सम्मिलित कर रहा हूँ, परमगुरु ओशो की अद्भुत किताबों को भी।

आगे की यात्रा क्या हो सकती है फिर? अध्यात्म का वाङ्मय कहता है, दूसरा चरण है सत्संगतः यानि उस व्यक्ति का साथ जिसने सत्य को जाना, जिसने समाधि को जाना। सत्संग वह व्यक्ति के संग जो सत्य को उपलब्ध है।

सत्संग क्या देता है? सत्संग ध्यान देता है। तो पहला चरण है प्रज्ञा का, समझ का, जो शास्त्र देता है। फिर सत्संग प्रज्ञा के संग ध्यान भी देता है।

ध्यान यात्रा का दूसरा चरण है। इसलिए पहला जोर होना चाहिए कि हमारे भीतर एक समझ पैदा हो। दूसरा जोर यह होना चाहिए कि हमारे भीतर ध्यान पैदा हो। इसलिए शंकराचार्य ने बहुत सुन्दर वचन कहा है और ओशो ने इसकी बड़ी प्रीतिकर व्याख्या की है। शंकराचार्य कहते हैं कि-

उत्तमो ब्रह्म सद्भाव, ध्यान भावस्य च मध्यमा,
स्तुति च अद्यमो भावो, वाहे पूजा धमाधमः॥

बाहर की पूजा- मन्दिर-मस्जिद जाना है, कि गुरुद्वारे जाना है, वह तो निम्न से भी निम्न है। अभी पढ़ाई शुरू नहीं हुई, अध्यात्म के जगत में तुम स्वीकृत हुए ही नहीं। तुम परिधि के बाहर हो। अभी तो अध्यात्म की क्रीड़ा का जो मैदान है, इसके तुम बाहर-बाहर हो। ज्यादा से ज्यादा लाइन्स-मैन हो। कहते हैं शंकराचार्य कि ज़रा फील्ड के अन्दर, मैदान में दाखिल होओ।

स्तुति च उद्यमो भावो; यह है लोअर स्कूल, प्राइमरी स्कूल। जब तुम स्तुति, जप आदि से परिचित होते हो, शब्दों से परिचित होते हो, तो प्राइमरी स्कूल में आ गए। लेकिन कोई शास्त्र से चाहे कि हम शिक्षा का उच्चतम स्तर प्राप्त कर लें, तो शास्त्र उच्चतम स्तर तक तुम्हें ले नहीं जाता। तब शंकराचार्य कहते हैं, ध्यान भावस्य च मध्यमाः, शास्त्र से ऊपर उठकर अब ध्यान में डूबो।

कोई भी ध्यान जब हम करते हैं, ध्यान की मंजिल है, विचार शून्यता। जब विचार शून्यता को आप उपलब्ध होने लगो, समझना ध्यान घटित हुआ। जब होश पैदा होने लगे, साक्षीत्व जागने लगे। जब द्रष्टा भाव जन्मने लगे, एक तरह की तटस्थता, दूर हटकर जगत को देखने की क्षमता पैदा होने लगे, तो समझना कि अध्यात्म के शिक्षालय के हाई स्कूल में प्रवेश हो गया।

यदि कोई जिद कर ले, कि हम शास्त्र तक ही अटके रहेंगे तो वह ऐसा विद्यार्थी हुआ, जो कहे कि प्राइमरी स्कूल से आगे जाने की इच्छा नहीं है। यहाँ के शिक्षक बड़े अच्छे हैं, ये विद्यालय बड़ा प्यारा है, इसमें हमने कई वर्ष

बिताए हैं, इसे हम छोड़ना नहीं चाहेंगे। तो ऐसे विद्यार्थी को तुम क्या कहोगे? प्रज्ञावान नहीं, मूढ़ है वह।

उसी तरह कोई हाई स्कूल में, ध्यान के जगत में प्रवेश कर गया, ध्यान भावस्य च मध्यमाः, माध्यमिक विद्यालय में; और कहने लगे कि ध्यान हमको बहुत आनन्द देता है, यह विचार शून्यता यानि उनमनी दशा तक ले जाता है, मन के पार ले जाता है तो बड़ी अच्छी यात्रा हुई, बड़ा विकास हुआ। लेकिन वह भी यात्रा का हिस्सा है, मार्ग का एक पड़ाव है, मुकाम नहीं है।

ओशो अपने प्रवचनों में जगह-जगह कहते हैं कि ध्यान साक्षी तक ले जाता है। मैंने एक वचन नहीं पढ़ा कि ध्यान संबोधि या आत्म-जागरण तक ले जाता है। हां, जागरण तक ले जाता है, किंतु आत्म जागरण तक नहीं। फिर क्या चीज है जो आत्म जागरण तक ले जाती है?

जगह जगह ओशो ने अपने विभिन्न प्रवचनों में इशारे किए हैं। ध्यान से आगे की यात्रा समाधि है, यह तीसरा चरण है। फिर से कह दूँ प्रथम, शास्त्र प्रज्ञा देता है, द्वितीय, सत्संग प्रज्ञा तथा ध्यान देता है।

तृतीय चरण है गुरुतः। गुरु अर्थात् वह मार्गदर्शक जिससे तुम्हें प्यार हो गया। सत्संग करते-करते जिसके प्रति हृदय में एक श्रद्धा जन्म गई। यही है वह व्यक्ति, जिससे हृदय जुड़ गया है। यूँ तो बहुत लोगों से सत्संग कर सकते हो, बहुत लोगों के पास बैठ सकते हो। बहुत लोग तुम्हें प्रिय दिख सकते हैं, लेकिन कोई ऐसा है, जो प्रिय लगने लगता है। प्रिय दिखना एक बात है, प्रिय लगना और बात है।

लाख मुखड़े मिले और मेला लगा,
रूप जिसका जंचा, वह अकेला लगा।
रूप ऐसे ना कोई संवारा करे,
मन दुबारा तिबारा, पुकारा करे।

लाख मुखड़े हैं, अलग-अलग संत हैं। एक से एक अद्वितीय जागृत लोग हैं, खासकर भारतीय उपमहाद्वीप की यह धरती तो बहुत उपजाऊ है। मैं तो ब्रिटेन में खोजता ही रहा कि कोई ऐसा संत है; जिसके पास बैठा जाए। एक व्यक्ति नहीं मिला। मगर भारतीय उपमहाद्वीप में एक से एक प्यारे लोग हैं लेकिन याद रखना, इन सभी प्यारे लोगों के पास बैठा तो जा सकता है लेकिन ... रूप जिसका जंचा, वो अकेला लगा। कहीं कोई एक ऐसा व्यक्ति मिलता है, जिससे मिलकर हृदय का तार झनझना उठता है। स्पष्ट प्रतीत होता है कि बस यही वह व्यक्ति है, जन्मों जन्मों से जिसकी मैं तलाश कर रहा था।

तब आरंभ होता है तीसरा चरण- गुरुतः। गुरु क्या देता है? प्रज्ञा देता है, ध्यान देता है और समाधि भी देता है। गुरु वही है, जो तीनों दे दे। तीसरा चरण, समाधि-सोपान शुरु होता है। समाधि तुम प्राप्त नहीं कर सकते हो, समाधि तुम्हें कोई देता है। एक पद कभी मैंने लिखा था-

अब एक पहेली बूझो तो, जानूं तू बड़ा सयाना है,
क्या वस्तु गुरु देता जिसको संतों ने अमोलक माना है?
क्या रामरतन धन मीरा का, नानक का, संत कबीरा का,
अथ सद्गुरु शरणम् गच्छामि, भज् ओशो शरणम् गच्छामि।।

यह समाधि तुम्हें गुरु देता है, इसके लिए तुम्हें अपनी पात्रता अर्जित करनी होती है। ऐसा नहीं कि गुरु देना नहीं चाहता, गुरु तो देने के लिए कब से लालायित है।

मेरे एक मित्र राजेन्द्र अनुरागी जी, ओशो के बालसखा एवं ओशो के शिष्य भी हैं, उनकी एक बड़ी प्यारी कविता है-

जितनी प्यासी प्यास स्वयं है, उतना ही प्यासा है पानी,
हर पानी की एक डगर है, हर प्यासे की एक कहानी।

जितना तू प्यासा है प्यारे, पानी से प्यास बुझाने को,
पानी उससे ज्यादा प्यासा, है तेरी प्यास बुझाने को।।

जितने प्यासे तुम हो गुरु से समाधि लेने के लिए, उससे कहीं ज्यादा उत्सुक और प्यासा है गुरु तुम्हें समाधि देने के लिए। लेकिन समाधि तो दूध है, अमृत है, अगर तुम्हारा पात्र साफ नहीं, निर्मल नहीं और गुरु उसमें दूध डाल दे तो दूध फट जाएगा। वो जहर हो जाएगा। गुरु इन्तजार करता है कि कब तुम्हारा पात्र साफ हो। ध्यान पात्र को स्वच्छ करता है। याद रहे, ध्यान दूध नहीं है, ध्यान तुम्हारे पात्र की सफाई है।

ओशो ने चेतना के पात्र को साफ करने की इतनी विधियाँ दी हैं, इतने तरीके दिये हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं है। ओशो के पहले जितने भी बुद्धपुरुषों ने पात्र को साफ करने की कोई भी विधियां कहीं कही थीं, उन सारी विधियों को और भी परिमार्जित करके ओशो ने हमें दिया। ओशो को सफाई पर काफी जोर देना पड़ा, उसका कारण था।

मैं प्रथम बार आया था काठमाण्डू, 1986 में जब ओशो यहां पधारे थे। तब बड़ा स्वच्छ था काठमाण्डू का पर्यावरण। इस बार आया तो प्रदूषण देखने लायक था।

खूब प्रदूषण बढ़ा है, केवल प्रकृति में ही नहीं, बल्कि चेतना में भी। पहले के लोग ज्यादा सीधे-साफ-निर्मल थे, गुरु सीधे ही उनको समाधि दे देता था।

सुनी होगी कुंभनाथ और लालनाथ की कहानी। कुंभनाथ कहते थे, अरे है कोई लेवनहारा। लालनाथ अपनी नई-नई दुल्हन को लेकर उस रास्ते से जाते थे, कुंभनाथ की आवाज़ सुनाई पड़ी। कुंभनाथ समाधि का गड्ढा खोदकर उसमें प्रवेश करने की तैयारी में थे। लालनाथ आये, गुरु और शिष्य की आँखें मिलीं और कुंभनाथ ने सीधे ही लालनाथ को समाधि दे दी। पात्र साफ था, साफ करने की जरूरत नहीं थी।

मनुष्यता की विकास यात्रा में ओशो-युग आते-आते, मनुष्य का चित्त बहुत प्रदूषित हो गया। इसलिए इस चित्त को स्वच्छ करने के लिए, ओशो को बहुत सारी विधियाँ देनी पड़ीं। लेकिन तब भी शायद हमारा चित्त उस पवित्रता को प्राप्त नहीं हो सका, जिसका इन्तजार था ओशो को, कि वे हमें समाधि दे सकें। उन्होंने ओंकार-ज्ञान दिया कुछ लोगों को, वे गिनती में पाँच-दस लोग थे, जिनका चित्त इतना निर्मल हो गया था कि उन्हें समाधि सीधी दी जा सके।

तीसरा चरण है, ध्यान। जो पात्र की सफाई करता है, चेतना को निर्मल करता है। और हर गुरु को प्रतीक्षा करनी पड़ती है। गंदे बर्तन में अमृत डालने से वह भी विषाक्त हो जाएगा। समाधि में जल्दबाजी नहीं की जा सकती।

कबीरा मन निर्मल भया, जैसे गंगा नीर,
पीछे पीछे हरि चलें, कहत कबीर-कबीर।।

लोग पूछते हैं, प्रभु कैसे मिलेंगे? पूछना चाहिए हमारा मन रूपी पात्र कैसे साफ होगा? गुरु इन्तजार करता है। जब भी देखता है कि अब हमारे शिष्य का, साधक का पात्र साफ हो गया, वह समाधि का दूध उसमें डाल देता है। चौथा चरण समाधि का है, जिसके बारे में कबीर कहते हैं-

साधो सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप जा दिन ते जागी,
दिन दिन अधिक चली।।

बिना गुरु के कोई समाधि जगती ही नहीं। ध्यान जग सकता है, सत्संग से; प्रज्ञा जग सकती शास्त्र से। लेकिन समाधि, शास्त्र या सत्संग से नहीं जगती। समाधि हमेशा गुरु ही देता है। मीरा कहती है-

पायो जी मैंने राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सद्गुरु, किरपा कर अपनायो।

जिसने भी समाधि की चर्चा की है आज तक, सबने यह बात आवश्यक रूप से कही है कि समाधि मेरे गुरु ने मुझे दी। किसी ने नहीं कहा कि समाधि स्वयं ही मैंने पा ली। समाधि गुरु देता है, यह है चौथा चरण यात्रा का, जब तुम कह उठते हो-

जहाँ जहाँ डोलूं, सो परिक्रमा, जो जो करूं सो सेवा,
गिरह उजाड़ एक सम लेखों, पूजूं और ना देवा,
शबद निरंतर में मन लागा, बिपुल वासना त्यागी,
उठत-बैठत कबहु ना टूटे, ऐसी तारी लागी,
साधो सहज समाधि भली।।

ध्यान कुछ क्षणों के लिए करते हो, घंटे दो घंटे के लिए करते हो, लेकिन समाधि घंटे, दो घंटे की चीज नहीं। ऐसा कोई नहीं कह सकता कि घंटे भर मैं समाधि में था। उठत-बैठत कबहु ना टूटे, ऐसी तारी लागी।

कहे कबीरे उन्मने नीर, सो प्रकट परगाई,
सुख दुख से है परे परम पद, पीछे रहा समाई।।
साधो सहज समाधि भली।।

परमपद है, मंजिल नहीं है, याद रखना। जब मैंने कबीर का यह गीत पहले पढ़ा था, तो मुझे ऐसा लगा था कि यही तो मंजिल है। लेकिन फिर मुझे बोध हुआ कि यह भी अंतिम लक्ष्य नहीं है। यह परमपद, परम ध्यान है, लेकिन यह मंजिल नहीं है। इसके ऊपर, अगला चरण है आत्मज्ञान का, संबोधि का, समाधि से आगे एक और छलाँग। समाधि में तुम परमात्मा को जान लेते हो, संबोधि में तुम परमात्मा हो जाते हो।

गुरु गोबिन्द दोऊ खड़े, काको लागू पाय,
बलिहारी गुरु आपकी, जिन गोबिन्द दियो बताए।।

गुरु बता देता है कि यह गोबिन्द है। तुम पहली बार चौंक पड़ते हो, अरे! परमात्मा के बारे में तुम्हारी सारी कल्पनाएँ ध्वस्त हो जाती हैं। जन्मों-जन्मों से आज तक तुम परमात्मा के बारे में जो भी धारणाएं बनाए थे, एकाएक वो सारी परिकल्पनाएँ, सारे सब्जबाग, सपने चकनाचूर हो जाते हैं। क्योंकि आज तक तुमने जिसको भी परमात्मा समझा था, वह यथार्थ नहीं था। पहली बार जब गुरु दिखाता-सुनाता है तो बहुत लोग इस घटना को बरदाश्त ही नहीं कर पाते।

मगर परमात्म-बोध के उपरांत भी याद रखना–

अभी इश्क के इम्तहाँ और भी हैं
सितारों से आगे जहाँ और भी हैं।

यह भी मंजिल नहीं, इसके बाद एक और कदम है। यहाँ तक गुरु, इसके बाद भी थोड़ी दूर तक गुरु तुम्हारे साथ होता है, कहता है- चरैवेती, चरैवेती। चलते चलो, चलते चलो। लेकिन बार-बार तुम पीछे मुड़ते हो, यह राह ठीक भी है या नहीं? मैं जिस मार्ग पर चल रहा हूँ, कहीं भटक तो नहीं जाऊंगा? गुरु कहता है कि नहीं, मैं तुम्हारे साथ हूँ, चलो।

राह में एक सितारा भी बहुत होता है,
साथ में एक सहारा भी बहुत होता है।
दूर मझदार में जाने की जरूरत क्या है,
डूबना हो तो किनारा भी बहुत होता है।।

गुरु का आश्वासन और सहारा बड़े काम आता है- चलते चलो, ठीक जा रहे हो। मगर याद रखना, गुरु भी तुम्हें परमात्मा से एकात्म नहीं करा सकता।

एक उदाहरण मुझे बहुत पसंद है, जब हिंदुओं में शादी होती है तो सुहागरात को दूल्हा कमरे में बैठा रहता है और फिर दुल्हन को दूल्हे की बहन, या अन्य कोई रिश्तेदार ले जाती है दरवाजे तक। और कहती है, अब तू जा अंदर, दूल्हा बैठा तेरा इन्तजार कर रहा है। दुल्हन शरमाती है, झिझकती है, हिचकती है, कहती है तू भी चल, मेरे साथ वहां तक। लेकिन वे सारे रिश्तेदार, कहते हैं कि बस इसके अन्दर तो तुझे अकेले जाना होगा। गुरु की कुछ ऐसी ही भूमिका है, बस दरवाजे तक जाएगा और वहाँ से कहेगा कि जा, अब तेरा दूल्हा, परमात्मा तेरा इन्तजार कर रहा है।

हम वहां तक कैसे जाएं? अब तो गुरु भी नहीं संग जाएगा।

अब यहाँ दो तरह के साधक होते हैं, एक स्त्रैण चित्त के होते हैं, दूसरे पुरुष चित्त के होते हैं। गुरु कहेगा पुरुष साधकों से कि अब छलाँग लगाओ, धक्का मारेगा कि जाओ अन्दर। स्त्रैण चित्त के साधकों के बारे में गुरु भी जानता है, कि नहीं छलाँग लेंगे। उनके लिए कहता है, परमात्मा से कि देख, ये तो छलाँग लेंगे नहीं, अब अन्दर से तू ही बाँह थाम के भीतर खींच ले।

साधारण दूल्हे से जब इतनी हिचक होती है तो परमात्मा तो परम दूल्हा है, वहां बड़ी झिझक होगी। हिम्मत जवाब दे जाएगी, हाथ-पैर कंपने लगेंगे।

अब वहाँ भूमिका परम गुरु की शुरु होती है, परम गुरु वहां सहायक होता है। स्मरण रहे कि वहां पर गुरु सहायक नहीं होता।

हम सब सौभाग्यशाली हैं कि ओशो हमारे बीच परम गुरु के रूप में उपलब्ध हैं। ओशो जब तक देह में थे, तब तक परम गुरु की सहायता हमें उपलब्ध नहीं थी। इसलिए कुछ मित्रों से मैं कह रहा था कि ओशो के शरीर में रहते आत्मज्ञान की जितनी सम्भावना थी, उससे कई गुना सम्भावना अब पैदा हो गई है। परम गुरु होने के लिए देह की सीमा को पार करना पड़ता है। विदेही होकर आज ओशो परम गुरु के रूप में मौजूद एवं कार्यरत हैं।

इसलिए आज यात्रा पहले से अधिक आसान है। ओशो के शरीर में रहते दस लोग परम शिखर को छू पाए तो आज सम्भावना बन गई है, दस हजार लोग जागृत हो सकते हैं। ओशो ने हमेशा दस हजार बुद्धों की चर्चा की है।

ओशो ने दो-चार बुद्धों की बात नहीं की। ओशो का सपना है दस हजार बुद्धों को पैदा करना। लेकिन ओशो दस-बारह वर्ष पहले ही शरीर से विदा हो गए। ओशो जो सपना छोड़ गए हैं, दस हजार बुद्ध पैदा करने का, इस सपने को पूरा करने का दायित्व हम सबके ऊपर है। अगर हम ने सबने मिलकर इस सपने को पूरा किया, तब तो हम उनकी संतान कहलाने के अधिकारी हैं। अगर हम पिता के सपने को पूरा नहीं करते हैं, नहीं किया, तो समझना कि हम उनकी लायक सन्तान नहीं थे।

हम सब, इस सपने को पूरा करने के लिए कटिबद्ध हैं। सौभाग्य से चितवन जो कम्यून है; अस्तित्व ने, स्वयं ओशो ने, इस सपने को पूरा करने का दायित्व इस कम्यून को सौंपा है। यहाँ से ओशो की दृष्टि पर आधारित विश्वव्यापी आध्यात्मिक आन्दोलन को परिचालित किया जा सकता है।

जगह-जगह जो भी कार्य ओशो के होते हैं, बड़े अच्छे कार्य हो रहे हैं, वूब सुन्दर कार्य हो रहे हैं, हम सबके प्रति धन्यवाद से भरे हैं। ओशो के कार्य में जिसने थोड़ा भी योगदान दिया, हम उन प्रेमियों के प्रति अनुग्रहीत हैं। हमें किसी से विरोध नहीं है। जिसने कुछ अच्छा किया, उसको धन्यवाद। किसी ने बुरा किया तो उसका भी शुक्रिया, कि बुरा करना चाहा था तो पता नहीं कितना बुरा कर देता, इतना थोड़ा बुरा किया इसके लिए धन्यवाद।

जीवन की दो शैलियां संभव हैं- या तो हम शिकायत से भरकर दुखी जीएं, अथवा अशिकायत एवं अहोभाव से भरकर उत्सव मनाएं।

जो शिकायत से भरा चित्त है, उसकी मंजिल नर्क है और जो धन्यवाद से भरा चित्त है, उसकी मंजिल स्वर्ग है। हमें सबके प्रति धन्यवाद, अहोभाव से भरे हुए इस यात्रा को तय करना है- नाचते-गाते, आनंद मनाते।

मैंने इन चार सोपानों की आपसे चर्चा की। पहली बात प्रज्ञा को जगाना है, समझ को विकसित करना है। क्या है प्रज्ञा? प्रज्ञा की सर्वोत्तम व्याख्या गौतम बुद्ध ने अपने आष्टांगिक मार्ग में की है- सर्वप्रथम हम सम्यक दृष्टि को उपलब्ध हों। जैसा है सत्य, जीवन का तथ्य, उसे वैसा ही ग्रहण करें बिना व्याख्या के। उसमें जोड़ें-घटाएं नहीं, मिर्च-मसाला न लगाएं। दूसरा बिंदु- हम कलह से मुक्त हों।

सबसु रख निरबैरता, गहो दीनता ध्यान,
अन्त मुक्ति पद पाई हों, जग में कछु ना हानि।

निरबैरता यानि किसी से कोई बैर नहीं, कलह नहीं, यह है प्रज्ञा।

तीसरा लक्षण- असाधारण जीवन, लीक से हटकर मौलिक जीवन, इनिशिएटिव, पहल करता हुआ जीवन, यह है प्रज्ञा।

चौथा, सम्यक आजीविका, ख़ुशहाल कर्मजीवन, शांतिमय जीवन, सबसे मधुर संबंध बनाता हुआ जीवन। जब-जब ओशो इनडिपेंडेन्स, स्वतन्त्रता की बात करते हैं, तो हम सोचते हैं, सबसे असंबंधित, बस हम स्वतंत्र हैं, किसी से क्या लेना-देना? नहीं, ओशो इस बात से राजी नहीं है।

वे तीन चरणों में समझाते हैं। पहला डिपेंडेन्स; मूर्च्छा में निर्भरता। दूसरा प्रज्ञा से इनडिपेंडेन्स को, होश द्वारा आत्मनिर्भरता को उपलब्ध हो जाएं। डिपेंडेन्स से इनडिपेंडेन्स, मूर्च्छा से होश, बंधन से मुक्ति, फिर ओशो कहते हैं, यहाँ पर तुम्हारी यात्रा पूरी नहीं होती। इसके आगे है, इन्टरडिपेंडेन्स। एक दूसरे के साथ सहयोग करें, एक दूसरे के प्रति प्रेम से भरें, एक दूसरे के प्रति परस्पर-निर्भरता, ये आत्मनिर्भरता से भी ऊँची चीज है- परस्पर-तंत्रता।

सच कहो तो जीवन तो एक-दूसरे से जुड़ा है। हर बात के लिए हम दूसरे पर निर्भर हैं, इसे वे कहते हैं प्रेम। सच कहो तो जब-जब ओशो कहते हैं प्रेम, तो वे इन्टरडिपेंडेन्स की बात करते हैं। प्रज्ञापूर्ण पारस्परिक सहयोग की बात करते हैं।

ओशो के प्रेम की परिभाषा है, कि एक-दूसरे पर प्रज्ञापूर्ण निर्भरता। याद रखना प्रज्ञापूर्ण! विवेकपूर्ण! बेहोशी में भी हम एक दूसरे पर निर्भर हो सकते हैं। किंतु प्रज्ञापूर्ण परस्पर निर्भरता का नाम है प्रेम। इसलिए पहली बात इस प्रज्ञा को उपलब्ध हो जाओ और इस प्रज्ञा में सम्मिलित है, शीलवान होना; मधुर संवाद की कला, सम्यक वाणी का प्रयोग।

संत कबीर के अमृत वचन में-

मीठी वाणी बोलिए, मन का आपा खोए,
औरन को शीतल करें, आप भी शीतल होए।।

और छठा प्रज्ञा सूत्र है- सम्यक संकल्प, कोई भी काम करो, संकल्प पूर्वक करो। सक्रिय ध्यान करना है, एक संकल्प ले लो कि आज से तीन महीने तक, प्रतिदिन सक्रिय ध्यान करेंगे। सांसारिक कामों के लिए तो छोटे -मोटे विल पावर से चलेगा, किंतु धर्मयात्रा में महासंकल्प की आवश्यकता है।

प्रज्ञा का सातवाँ सोपान, होशपूर्वक जीना, कुछ भी करो- सजगता से।

आठवाँ सोपान, तथाता- लिव विद् एक्सेप्टैंस। जब भी कोई चीज प्राप्त हो, उसे अधिकार समझ कर मत ग्रहण करो। उसे प्रभु की ओर से भेजा हुआ उपहार समझकर ग्रहण करो। ज़रा सी दृष्टि बदल लो, चीजें बदल जाती हैं। जीने की सलीका बदल जाता है। अधिकार समझ कर सोचा कि आज हमने इतनी मेहनत की थी, आज हमने इतना ध्यान किया है। सक्रिय ध्यान किया और क्षण भर को हमें एक विचारशून्यता का अनुभव हुआ। हम सोचते हैं कि हमने आखिर इतनी मेहनत की थी, यह मिलना ही चाहिए, तो तुम चूक गए।

प्रयत्न तो तुम करना, पुरुषार्थ खूब करना; लेकिन ज़रा सी शांति मिल जाए तो प्रभु को कहना कि हे प्रभु! यह जो तुमने दान दिया है विचारशून्यता का, इसके लिए तुम्हें बहुत-बहुत धन्यवाद। बस उपहार समझकर ग्रहण करना।

इन आठ आयामों का सम्मिलित नाम है- प्रज्ञा। विवेक। विज़्डम।

इस चितवन आश्रम में, इन चारों सोपानों की यात्रा का हम प्रावधान करने जा रहे हैं। चार तलों के प्रोग्राम्स यहाँ चलेंगे। पहला प्रज्ञा, इसके लिए कार्यक्रम चलेंगे ताकि सारे लोग जो कम्यून के भीतर रहते हों, जो यहाँ पर आते हों, वे सब प्रज्ञावान हो जाएं।

हमारे मित्र हैं, स्वामी मैत्रेयजी, वे नारद की तरह सारे विश्व में भ्रमण करते रहते हैं और जहाँ-जहाँ ओशो कम्यून हैं, वहाँ जरूर जाते हैं, तो हमसे कह रहे थे कि सब जगह कम्यून टूट रहे हैं। वे शैलेन्द्र जी से पूछ रहे थे कि इसका क्या कारण है? शैलेन्द्र जी ने बहुत प्यारा जवाब दिया, कहा कि प्रज्ञा के अभाव में ईर्ष्या बहुत, द्वेष बहुत, कलह बहुत।

प्रज्ञाहीनता से हम कम्यून नहीं चला सकते। जो लोग आश्रमवासी हैं, जो लोग आएंगे उनके लिए प्रज्ञा का कार्यक्रम हम चलाएंगे यहाँ से। उस कार्यक्रम

में भाग लेने से अद्‌भुत समझ का जन्म होता है, व्यक्ति प्रज्ञावान हो जाता है।

इसके बाद ध्यान। मुझे खुशी है कि ध्यान हेतु हमें ज्यादा मेहनत अपने संन्यासियों पर करने की जरूरत नहीं है। सबने करीब-करीब ध्यान का, होश का, द्रष्टा का स्वाद चखा है। क्योंकि इतना ज्यादा ओशो ने इसको हैमरिंग किया है कि साक्षी को जिसने नहीं जाना, उसने ओशो को ही नहीं समझा।

मेरे पिताजी ओशो के संन्यासी थे- स्वामी सहजानंद भारती। एक दिन कहने लगे, ऐसा लगता है कि ओशो का हर संन्यासी बुद्ध हो जाएगा। मैंने कहा हद कर दी आपने, ये आप कैसी बात करते हैं? हर संन्यासी बुद्ध हो जाएगा! वे बोले, हां। पूरे होशोहवास में, उत्तरदायित्व के साथ यह घोषणा करता हूँ कि प्रत्येक ओशो का संन्यासी संबुद्ध हो जाएगा।

मैंने कहा, मुझे बात कुछ समझ में नहीं आई।

उन्होंने कहा, ओशो ने इतनी बार साक्षी, होश, द्रष्टा, समझाया है, कि यदि कोई आदमी जीवन में साक्षी को नहीं साध सका तो मरते वक्त उसे ओशो का यह शब्द याद आ जाएगा कि उसे साक्षी होना है। क्या तुम नहीं समझते कि मरते समय जो साक्षी हो जाएगा, वो बुद्ध हो जाएगा?

मैंने कहा कि हां बात तो ठीक है, मरते समय जो साक्षी हो जाएगा, उसके बुद्धत्व में कोई शक नहीं है। संन्यासी को ओशो की कम से कम एक बात तो याद रह ही जाएगी- साक्षी। वे बोले- जब इतनी भी बात याद नहीं रही, तब ओशो का संन्यासी कहलाने का तो वह हकदार भी नहीं है।

अतः ध्यान का जब सवाल आता है, मुझे लगता है कि हमारे संन्यासियों ने ध्यान के विषय में इतनी मेहनत की है कि ध्यान का अनुभव तो हो ही गया है, करीब-करीब सबको। फिर भी नए मित्रों हेतु ध्यानप्रज्ञा के कार्यक्रम चलाएं जाएंगे, ताकि ध्यान की और गहराइयों में प्रवेश हो सके।

तीसरा कार्यक्रम, समाधि। मुझे बहुत ही आनन्द है, आपको बताने में कि शैलेन्द्र जी, जिन्होंने समाधि के शिखर को जाना है, जो समाधि देने की क्षमता से मण्डित हैं, यहाँ विद्यमान हैं। और जब योगप्रज्ञा के कार्यक्रम में आप भाग लेंगे, तो आप उनसे समाधि को ग्रहण कर सकेंगे। मैं नहीं चाहता था कि शैलेन्द्र जी को मैं अपने से अलग करूँ क्योंकि शैलेन्द्र जी को भारत के लोग बहुत प्यार करते हैं। भारत के लोग भी इनके प्यारे हैं।

एक कहानी मुझे याद आई। आप सब इस कहानी को जानते होंगे कि दशरथ के पास विश्वामित्र पहुँचे कि तुम राम-लक्ष्मण को हमें दे दो, क्योंकि

राक्षस हमें बड़ा परेशान करते हैं, हमारा यज्ञ विध्वंस करते है। दशरथ ने कहा कि राम और लक्ष्मण हम सबके प्राणों के प्यारे हैं, तुम कुछ और माँग लो, तुम राज्य मांग लो, हमारी सम्पदा मांग लो, लेकिन राम-लक्ष्मण को मत मांगो।

विश्वामित्र ने कहा- मेरा काम तुम्हारे धन और सम्पदा से चलेगा नहीं।

आधुनिक विश्वामित्र बनकर स्वामी ओम भारती बिलासपुर पहुँच गए और कहने लगे कि शैलेन्द्र जी और मा प्रिया को दे दो। हमने उनसे बहुत कहा कि तुम कुछ और माँग लो, इन्होंने कहा हम बड़े संकट में है। आर्थिक राक्षस हमें बहुत परेशान कर रहा है, आप शैलेन्द्र जी और मा प्रिया को दे दो।

मुझे आना पड़ा यह देखने के लिए कि जिन प्यारे लोगों को हम छोड़ने जा रहे हैं, जिनसे क्षण भर का भी विछोह हमारे लिए बहुत मुश्किल है, वहां की स्थिति कैसी है? जब मैं यहाँ आया, आपका प्रेम देखा, सबकी भाव दशा देखी तो लगा कि ऐसे प्यारे लोगों के लिए तो अपने प्राण भी दिये जा सकते हैं। मुझे खुशी है कि इन दोनों को हम यहाँ छोड़ रहे हैं। और आप सबके लिए एक बहुत सुन्दर अवसर है कि आप अनायास, निष्प्रयास, समाधि को इनसे प्राप्त कर सकेंगे।

हां, समाधि प्राप्त करने के लिए, थोड़ा पात्र और स्वच्छ करना होगा। मुझे पूरा विश्वास है कि आप अपने पात्र को निर्मल करने की दिशा में प्रयत्नशील हो जाएंगे। और जब एक बार आपने समाधि को प्राप्त कर लिया, निश्चित रूप से शैलेन्द्र जी पग-पग पर साथ देंगे। फिर क्षण आ जाएगा कि परम गुरु ओशो इस प्रतीक्षा में है कि कब तुम दरवाजे पर आ जाओ, ताकि तुमको खींच लें परमात्म-लोक में।

प्रिय आत्मन्, एक संकल्प के साथ हमें इस यात्रा पर चलना है और मैं आपको पूरा भरोसा दिलाता हूँ कि आप एक बड़े अच्छे मार्गदर्शक के साथ हो। लेकिन मेरी बात को मान मत लेना, ओशो की धारा में मानने वाली बात नहीं है, मगर अविश्वास भी मत करना। खोले रखना अपने हृदय के वातायन। इस मार्ग पर चलने से मैंने जैसे-जैसे कहा, वैसे तुम्हारा भी अनुभव हो, तब तो तुम आगे चलना और अगर तुम्हें ऐसा लगे कि नहीं, हमने जो कहा वैसा तो नहीं हुआ, तो धन्यवाद देकर विदा हो जाना।

सम्बंध बढ़ाते हो जब-जब, जानना एक दिन टूटेगा,
जो यार दे रहा मान आज, वह यार एक दिन रूठेगा,
उस दिन मत तनिक गिला करना, कह कर शुक्रिया विदा करना।
अशिकायत शरणम् गच्छामि, भज ओशो शरणम् गच्छामि।।

इसलिए न तो विश्वास करना, न अविश्वास करना लेकिन जब इन कार्यक्रमों में भाग लेते हुए, तुम्हें वैसा ही घटित हो, ओंकार के नाद में डुबकी लगने लगे, प्रज्ञा विकसित होने लगे जिसकी आज हमने चर्चा की तो आगे बढ़ते जाना, फिर कंजूसी और आलस्य मत करना।

बहुरी न ऐसा दांव, नहीं फिर मानुष होना,
क्या देखत है ठाड़, पास से जाता सोना।

एक आखिरी बात मैं आपसे और कहूँ–

हर युग में नाविक आते हैं, कुछ नूतन घाट बनाते हैं,
तैयार खड़े जो चलने को, वे उन्हें साथ ले जाते हैं॥
खुल रही एक है नाव अभी, मत कहना मिला न दाँव कभी,
अथ सदगुरु शरणम् गच्छामि, भज ओशो शरणम् गच्छामि॥

सभी संन्यासियों एवं ओशो प्रेमियों का बहुत-बहुत धन्यवाद। जय ओशो।

अंत में मा ओशो प्रिया द्वारा 'ओशो शरणम् गच्छामि' की धुन पर कराए कीर्तन में सभी लोग नाचे-गाए, उत्सव मनाए। पांच मिनिट मौन होकर, शिथिलता में, शांति की गहराइयों में डूबकर प्रमुदित हुए।

तत्पश्चात् आयोजक स्वामी ओम भारती जी ने आभार प्रगट किया तथा सभी मित्रों को सप्रेम प्रसाद ग्रहण करने हेतु भाजनालय में चलने का निमंत्रण दिया।

इस प्रकार ओशो गंगोत्रीधाम, रायल नेशनल चितवन पार्क, सौराहा, नेपाल में आयोजित सद्गुरु त्रिविर की प्रथम ऐतिहासिक संगोष्ठी अत्यंत प्रीतिपूर्ण व ध्यानमय वातावरण में सम्पन्न हुई।